श्रीअरविन्द कर्मधारा

नवम्बर - दिसम्बर, 2020
वर्ष 50 अंक-6
श्रीअरविन्द आश्रम - दिल्ली शाखा
श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली

श्रीअरविन्द कर्मधारा

श्रीअरविन्द आश्रम

दिल्ली शाखा का मुखपत्र

नवम्बर-दिसम्बर-2020

(अंक-6)

संस्थापक

श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'

सम्पादन : अपर्णा रॉय

विशेष परामर्श समिति

कु0 तारा जौहर, विजया भारती,

ऑनलाइन पब्लिकेशन ऑफ श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा

(निःशुल्क उपलब्ध)

कृपया सब्सक्राइब करें-

saakarmdhara@rediffmail.com

कार्यालय

श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा

श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016

दूरभाषः 26567863, 26524810

आश्रम वैबसाइट

(www.sriaurobindoashram.net)

प्रकाश के लिए प्यास

जब सूर्य अस्त होता और सब कुछ नीरव हो जाता है, तब क्षणभर के लिए शांत होकर बैठो, और अपने- आपको प्रकृति के साथ एक कर दो। तुम अनुभव करोगे कि पृथ्वी से, वृक्षों की जड़ के नीचे से प्रगाढ़ प्रेम और कामना से पूर्ण एक अभीप्सा ऊपर उठ रही है और यह अभीप्सा ऊपर की ओर बढ़ती हुई तथा वृक्षों के तंतुओं में से संचार करती हुई उनकी उच्चतर शाखाओं तक उठ रही है- उस वस्तु के लिए कामना, जो प्रकाश लाती है और सुख फैलाती है, उस प्रकाश के लिए लिए जो चला गया है, जिसे वे वापस चाहते हैं। उनमें यह चाह इतनी पवित्र और तीव्र होती है कि यदि तुम वृक्षों में होने वाली गति को अनुभव कर सको तो तुम्हारी अपनी सत्ता भी उस शांति, उस प्रकाश और प्रेम के लिए हार्दिक प्रार्थना करने लगेगी जो अभी तक यहाँ अभिव्यक्त नहीं है।

प्रार्थना और ध्यान

हे परम प्रभो, शाश्वत गुरु, मुझे फिर से यह अवसर प्रदान किया गया है कि तेरे पथ-प्रदर्शन में पूर्ण विश्वास की अद्वितीय प्रभावकारिता को जांच सकूँ। कल तेरा प्रकाश मेरे मुख द्वारा अभिव्यक्त हुआ और उसे मेरे अंदर कोई प्रतिरोध न मिला, यंत्र इच्छुक और वश्य था और उसकी धार पैनी थी।

हर चीज में और हर सत्ता में तू ही कर्ता है और जो तेरे इतने निकट हों कि सब क्रियाओं में बिना अपवाद के तुझे देख सके वह जान जायेगा कि हर क्रिया को आशीर्वाद में कैसे बदला जाये।

एकमात्र महत्त्वपूर्ण चीज है, सदा तेरे अंदर निवास करना, हमेशा, सदा-सर्वदा तेरे अंदर निवास करना, इन्द्रियों के भ्रमों और धोखों के परे, काम से पीछे हटकर, उससे इंकार करके या उसे अस्वीकार करके नहीं, क्योंकि यह तो व्यर्थ का विषैला संघर्ष है, बल्कि जो भी काम क्यों न हो, उसमें सदा-सर्वदा तुझे ही जीना; तब भ्रम तितर-बितर हो जाता है, इन्द्रियों के मिथ्यात्व लुप्त हो जाते हैं, कार्य-कारण के बंधन कट जाते हैं, सब कुछ तेरी शाश्वत उपस्थिति की महिमा की अभिव्यक्ति में रूपांतरित हो जाता है।

भगवान् करे ऐसा ही हो

- श्रीमाँ

विषय-सूची

क्र.सं.	रचना	रचनाकार	पृष्ठ
1	प्रार्थना और ध्यान	श्रीमाँ	3
2	संपादकीय	अपर्णा रॉय	5
3	प्रार्थना	सुमित्रानंदन पंत	6
4	श्रीअरविन्द की शक्ति	संकलन	7
5	माताजी के सन्देश	श्रीमाँ	11
6	जिन्दगी की कहानी	अज्ञात	12
7	श्रीअरविन्द विदेशियों की दृष्टि में	ड़ा. सुरेशचन्द्र त्यागी	14
8	श्रीअरविन्द का महाप्रयाण	प्रभात सान्याल	18
9	कठिनाई में श्रीमाँ की सहायता पाने का गुर	श्रीअरविन्द	23
10	सिद्धि-दिवस	छोटेनारायण शर्मा	25
11	सावित्री एक सक्षिप्त परिचय	प्रो0 मंगेश नाडकर्णी	28
12	श्रीमाँ का देह-त्याग	निरोदबरन	36
13	आश्रम-गतिविधियाँ		38

संपादकीय

प्रिय पाठकों!

2020 के इस वर्ष में जिस प्रकार विश्व का जनमानस आतंक और भय की विकराल भवर में डूबता उतराता संकट पूर्ण अवस्था से गुजरा है, वह निसंदेह प्रभु की कीड़ा का एक रोमांचक पहलू रहा, किंतु श्रीमाँ और श्रीअरविंद के शब्दों को याद करें तो यह भी विकास-पथ का गतिशील प्रवाह नजर आता है। इस वर्ष महामारी ने मानव-जगत की अंधी दौड़ पर एक प्रबल रोक लगाई और ऐसा लगा जैसे श्रीमाँ का सूत्र जीवंत रूप से उपस्थित हो कह रहा हो, रुको! फिर बढ़ो (step back)। कुछ भी करने और कहने के पूर्व रुको, सोचो फिर बढ़ो।

नवंबर दिसंबर का यह अंक अपने अंदर श्री अरविंद की योग साधना के सर्वाधिक महत्वपूर्ण घटनाक्रमों को समेटता है। 17 नवंबर-श्रीमाँ का अपने **भौतिक शरीर का परित्याग**, 24 नवंबर-श्री अरविंद द्वारा श्री कृष्ण चेतना का भौतिक अवतरण अर्थात **सिद्धि दिवस,** तथा 5 दिसंबर - **श्रीअरविंद का महाप्रयाण**। 17 नवंबर से 9 दिसंबर तक का यह महत्वपूर्ण समय मानो श्रीअरविंद के पूर्ण योग की साधना की पूरी कहानी सुनाता है। यह हमें इस योग पथ के अनुसरण द्वारा उच्च जीवन की ओर बढ़ने की प्रेरणा का जीवन लक्ष्य समझाता है। कविवर सुमित्रानंदन पंत की पंक्तियाँ मानो याद दिला रही हों -

ओ भारत जन!
तुम्हें बदलना है भू-जीवन,
मुक्त तुम्हें करना है,
जर्जर रूढ़ि-रीतियों में जकड़ा मन।
(कविता - ओ भारत जन !)

इन पंक्तियों को जीवन में व्यवहार रूप में परिणित करने हेतु हमारे पास और क्या मार्ग है सिवाय इसके कि अपने गुरु श्री अरविंद और भगवती मां की शरण में जाएँ। आशा का दामन कभी ना छोड़ें, तभी उनका आश्वासन प्राप्त होता है। किसी साधक से कहे गए उनके शब्द याद आते हैं - "यह अच्छी बात है कि तुम्हारे अंदर आशा है। आशा ही सुखद भविष्य का निर्माण करती है। तुम्हें कभी भी आशा नहीं छोड़नी चाहिए। कोई भी चीज असाध्य नहीं है और भगवान की शक्ति पर कोई हदबंदी नहीं की जा सकती बल्कि हमारा साहस और सहनशीलता भी इतनी गहरी होनी चाहिए जितनी गहरी हमारी आशा है। आशा की कोई सीमा नहीं होती।" --श्रीमाँ

यह तो हमें मानना ही होगा कि गुरु की महिमा का कोई अंत नहीं होता, बस हमें तो उनके द्वार पर जाना होगा, प्रार्थना के भाव और दृढ विश्वास के साथ।

इसी आशा और विश्वास की डोर के सहारे आइए 2020 को विदा करते हैं कि वह आने वाले वर्ष में प्रगति की नई सीढ़ियाँ लेकर आए और समय के प्रभाव से ठहर से गए मानव कदमों को संतुलन के साथ पुन:गति प्रदान करे।

प्रार्थना और नव वर्ष की हार्दिक शुभकामनाएँ-

सहित- अपर्णा

प्रार्थना

सुमित्रानंदन पंत

मातृ शक्ति, फिर उतरो निज प्रछन्न व्योम से
अर्वचनीय आलोक स्रोत सी, निज किरणों से
रेखा स्मित कर शुभ्र चेतना के शिखरों को,
उनकी शुचि अध्यात्म उच्चता को निखार कर !
मानव मन की गूढ़ गहनतम धूपछाँह भय
तलहटियों में पैठी विस्तृत शांत विभा सी,
निज प्रिय सन्निधि के पावन स्वर्णिम प्रकाश से
उनकी स्वप्न प्रतीक्षा को नव चेतन करने !
ज्योति प्रीतिमयि, उमड़ो नव आनन्द ज्वार सी
नित्य अधिक आनन्द राशि में बहने प्रतिपल,
शोभा की अगणित उठती बढ़ती लहरों में
दिक् चुंबी क्रीड़ा कर, निज स्वर्गिक कलरव से
जीवन को संगीत मुखर कर दो भू पथ पर !
आओ, माँ, सच्चिदानंदमयि, अमर स्पर्श से
झंकृत कर दो अंतरतम के रह : सत्य को,
उर तंत्री के मूक अचेतन तारों में जो
सोया है निःशब्द तुम्हारी स्मृति सा लिपटा !
शोभा अति शोभा में खिल कर सूक्ष्म सूक्ष्मतम
मोहित कर दे नयनों को : उर का अतृप्त सुख
सौ सौ आनंदों में होकर स्वतः प्रस्फुटित
सृजन शील हो उठे : अमिट प्राणों की तृष्णा
व्यापक, ऊर्ध्वग बन, परिणत हो दिव्य शांति में !
ज्ञान सहज चेतना ज्योति में विकसित होकर
रजत मुकुर बन जाय सत्य का, मानस का बल
परिवर्तित हो अमित तुम्हारी तपः शक्ति में !
जगज्जननि, निश्छल प्रतीति से हो नित प्रेरित
प्रीति प्रीति के लिए प्रीति बन पद पद्मों की
मज्जित कर दे मुझे परम हर्षातिरेक में,-
अक्षय वर बन उतरो, माँ, मानस शतदल

(कर्मधारा फरवरी, 1984)

श्रीअरविन्द की शक्ति

श्रीमाँ

सन्तुलन लाने के लिए दो रूपों में समान चेतना

तत्त्वतः हम एक हैं, समान हैं, कोई भेद नहीं है। अभिव्यक्ति में एक दूसरे को सहारा देने के लिए दो रूपों में यह एक और समान चेतना ही है। सृष्टि के सन्तुलन के लिए यह अनिवार्य है, कोई भेद नहीं है। ऐक्य पूर्ण है। यह एकमेव है, अद्वितीय है- एक ही चेतना है और कभी-कभी, जब कभी आवश्यकता हो, यह ऐक्य अभिव्यक्ति में भी दिखलायी देता है। जब व्यक्ति इस चेतना के प्रति उदघाटित हो जाता है, वह इस ऐक्य को देखता है। सचमुच यही है, सचमुच व्यक्ति इसे समझ नहीं सकता कि यह क्या है। इसे केवल जिया जा सकता है। एकाग्रचित्त और उदघाटित रह कर व्यक्ति इस अनुभूति तक पहुँच सकता है। यह कोई ऐसी चीज नहीं है जिसकी रचना मन से की जा सके। इस क्षेत्र में मन की कोई पहुँच नहीं है।

वस्तुतः, श्रीअरविन्द तथा मैं एक ही हैं, हमारी समान चेतना है। यहाँ नीचे, विभेद है, यह भेद सृष्टि में केवल सन्तुलन लाने के लिए बनाया गया है, अन्यथा हम समान हैं, हम सचमुच एक ही हैं। हाँ, इसकी व्याख्या करना बहुत मुश्किल है। मुझे शब्द नहीं मिल रहे। नहीं, यह सम्भव नहीं है। इसे शब्दों में अभिव्यक्त नहीं किया जा सकता। समझ रहे हो, अभिव्यक्ति के परे सब एकमेव है, कोई भेद नहीं है। एक ही वस्तु है, एक ही चेतना है, पूर्ण एकता है। हमारा पृथक् अस्तित्व नहीं है। लेकिन जब हम यहाँ नीचे उतरते हैं तो प्रतीत होता है कि हमारे भिन्न आकार हैं, हमारा पृथक अस्तित्व है, जब आवश्यक हो, हम एकरूप हो जाते हैं। कभी वे मुझसे एकात्म हो जाते हैं, साथ ही, ब्रह्माण्ड में भी वे सर्वत्र होते हैं। वे यहाँ मेरे अन्तर में आसीन हैं। वे मुझसे बातें करते हैं। वे मुझसे तदात्म हो जाते हैं और कभी-कभी वे मुझसे पृथक् होते हैं और मुझसे पृथक् अस्तित्व में जीते हैं। साथ ही, वे मेरे अन्तरस्थ हैं। लेकिन प्रतीयमान रूप में, वे मुझसे भिन्न हैं। यह एक क्रीड़ा है जो क्रियारत है कभी वे मेरे साथ एकात्म हो जाते हैं तो कभी वे स्वयं को अभिव्यक्ति में प्रक्षिप्त कर देते हैं। वे यहाँ हैं (श्रीमाँ अपने शरीर की ओर इंगित करती हैं) वे यहाँ हैं, वे विश्व में सर्वत्र हैं। वे विश्व में पायी जाने वाली प्रत्येक वस्तु में हैं। कभी वे स्वयं को प्रकट करते हैं तो कभी छिपे रहते हैं और व्यक्ति उन्हें कहीं नहीं देख पाता। इसी तरह वे सृष्टि को बनाये रखते हैं। एक बार सृष्टि के साथ एक हो जाते हैं तो दूसरी बार-जब कभी आवश्यकता हो-उससे अलग हो जाते हैं। दोनों चीजें आपस में मिली-जुली हैं, और किसी कारणवश, किसी लक्ष्य को साधित करने के लिए वे अपनी क्रियाएँ निर्धारित करते हैं। वे एक ही समय यहाँ भी हैं, वहाँ भी हैं। वे... नहीं, इसकी व्याख्या करना बहुत कठिन है। इसके लिए शब्द ही नहीं हैं, तुम इसे मन से नहीं समझ सकते

श्रीअरविन्द सर्वत्र हैं

जानते हो,जब उन्होंने शरीर छोड़ा वे अपना शरीर त्यागना चाहते थे, उनका शरीर 5 से 9 दिसम्बर तक यहीं रहा, उस समय वे अकल्पनीय चेतना से सराबोर थे। वह चेतना की गतिशील क्रिया थी जो उनके शरीर से विकीरित हो रही थी। वह इतनी ठोस थी, इतनी भौतिक, कि 'उनके अन्दर सब कुछ अलौकिक शक्ति के साथ स्पन्दित हो रहा था। यह चीज इतने ठोस रूप में प्रत्यक्ष थी। उस समय मैं श्रीअरविन्द के समीप थी और मैं देख रही थी कि श्रीअरविन्द की चेतना उनसे निकल कर सीधी मेरे अन्दर आ रही थी, इस तरह-भौतिक रूप में। यह एक विलक्षण क्रिया थी। मैं उनकी चेतना को अपने रोम-रोम में एक घर्षण के साथ प्रवेश करते हुए अनुभव कर रही थी। वह इतनी ठोस थी, इतनी तीव्र थी, एकदम से भौतिक, जिसे मैं बाहरी

रूप से भी अनुभव कर सकती थी, उस सम्पूर्ण चेतना ने मेरे अन्दर प्रवेश कर लिया, क्योंकि वह समान चेतना है।

प्रयाण करने से पहले उन्होंने सब कुछ मुझे दे दिया। सब कुछ, बिना बचाये सब कुछ, साथ में था पूर्ण आत्म-त्याग, मानों उनकी समस्त चेतना मेरे अन्दर विलीन हो गई और यह क्रिया घण्टे पर घण्टे चलती रही। मैं इसका वर्णन नहीं कर सकती वे मेरे लिए सब कुछ छोड़ गए।

हाँ, यह भौतिक शरीर ही सीमित है, जो बँधा हुआ है और जो मुक्त क्रीड़ा करने नहीं देता। एक बार चेतना इसमें (शरीर में) प्रवेश कर जाती है तो वह पूरी तरह से इस भौतिक रूप से चौखटे में बन्द हो जाती है। लेकिन वे, वे सर्वत्र हैं। वे यहाँ मेरे अन्तर में हैं, साथ ही विश्व में भी सर्वत्र हैं। वे मुझसे बातें करते हैं। मैं उनसे बातें पूछती हूँ और वे उत्तर देते हैं। हमारा वार्तालाप होता है और समान समय पर, जब कभी आवश्यकता हो, वे भिन्न-भिन्न स्थलों पर दूसरों से भी बातचीत करते हैं। हम जगत् के भाग्य का, मानवता की नियति का, भविष्य में क्या-क्या होगा, अगले पड़ाव के लिए क्या आवश्यकता है-इत्यादि चीजों का निश्चय करते हैं। यह सब हमारे निर्णय के आधीन होता है।

उनकी उपस्थिति सब जगह है, जहाँ कहीं व्यक्ति को उनकी आवश्यकता हो वे उपस्थित रहते हैं। सर्वत्र, सर्वत्र। वे मेरे साथ एकात्म हैं, साथ ही वे विभिन्न स्थलों पर भी हैं। वे सीमित नहीं हैं, मात्र भौतिक शरीर सीमित होता है, सूक्ष्म-भौतिक नहीं। सूक्ष्म-भौतिक सभी चीजों में प्रवेश कर सकता है और सब जगह जा सकता है। वह शरीर से बँधा हुआ नहीं होता। यही (शरीर) सीमा बाँधता है। मन की पकड़ में यह बात नहीं आ सकती। इसको तुम अपने मन से नहीं समझ सकते। मन समझा नहीं सकता, उसके पास इसे समझाने का कोई साधन नहीं है। बस अनुभूति द्वारा मेरे बच्चे। समान ही समान को पहचान सकता है, इसलिए इसे जानने के लिए व्यक्ति को उसी चेतना तक उठना होगा।

हाँ, हमेशा यही होता है- सतत रूप से पूर्ण तादात्म्य और साथ ही बाहर की ओर क्रिया... यानी, एक ही समय, सर्वत्र। प्रतिक्षण यह हो रहा है। जिनके पास दृष्टि है, वे इसे देख सकते हैं। यह चैत्य दृष्टि है।

कार्य समान है

प्रश्न- श्रीमाँ, श्रीअरविन्दके बारे में जानने से पहले क्या आपका उनके साथ कोई सम्पर्क था? क्योंकि मैंने कुछ किताबों में पढ़ा है कि उन्होंने और आपने करीब-करीब समान कार्य किया है।

कार्य समान है, क्योंकि उनकी और मेरी अन्तःप्रेरणा का स्रोत समान हैः 'परम'।

आप हमारे अन्दर विराजमान हैं-

माँ! श्रीअरविन्द ने हमेशा कहा है कि आप, हमारे अन्दर विराजमान रहती हैं।

हाँ, यह सच है, एकदम सही है।

मैं, वहाँ शाश्वत लौ के रूप में उपस्थिति हूँ, वह शक्ति हूँ जो क्रिया का सूत्रपात तथा सञ्चालन करती है। वह 'शान्ति' हूँ जो सभी चीज़ों को मधुरता तथा अचञ्चलता प्रदान करती है, वह 'परमोल्लास' हूँ जो उफनता है, उदात्त बनाता है, वह प्रकाश हूँ जो पवित्र तथा शुद्ध करता है, और हूँ वह 'स्पन्दन' जो समर्थन करता, अनुमति देता है।

श्रीअरविन्द ऐसी 'सत्ता' के रूप में उपस्थित हैं जो सबको धारण किए हुए हैं और मैं वहाँ पथ-प्रदर्शन के रूप में विद्यमान हूँ। वस्तुतः, दृश्यमान रूप में हम दो हैं, लेकिन वास्तव में अभिन्न हैं। एक है साक्षी अथवा द्रष्टा, तथा दूसरी है शक्ति।

जब तक तुम इस सत्य को उपलब्ध नहीं कर लेते, तुम कुछ नहीं समझ सकते। बहरहाल, उनके प्रति तुम्हारी कृतज्ञता को

भली-भाँति स्वीकार कर लिया गया है- उन्होंने तुम्हारी प्रार्थना सुन ली है और मैं तुम्हें अपने आशीर्वाद प्रदान कर रही हूँ।

हाँ, मेरे बच्चे, जिसने श्रीअरविन्द तथा मुझे सच्चे अर्थों में पहचान लिया है- वस्तुतः यह एक ही चीज़ है, हमारी समान पहचान है- उसके लिए सभी बाधाएँ, सभी मुसीबतें, सभी जाल, 'सत्य' के पथ पर आने वाली सभी रूकावटें बह जाती हैं, उन्हें हमेशा के लिए उसके रास्ते से हटा दिया जाता है-न केवल इस जन्म में बल्कि मृत्यु के बाद तथा आने वाले सभी जन्मों के लिए-यानी शाश्वत काल के लिए सभी विघ्न-बाधाएँ उसके पथ से बीन ली जाती हैं।

हाँ, उसके लिए, 'प्रभु' सर्वसमर्थ हैं। उसे बस दोहराते जाना है : "माँ- श्रीअरविन्द, माँ- श्रीअरविन्द" बस यही पर्याप्त है। (ध्यान)

मैं कार्य के लिए बनी रही

ऊपर से क्रिया करके, व्यक्ति यहाँ की सभी चीजों को अपने वश में रख सकता है, उन्हें उनके सही स्थान पर बिठा सकता है, अप्रिय चीजों के प्रारम्भ को रोक सकता है, लेकन इस सबका अर्थ रूपान्तर नहीं है। रूपान्तर का अर्थ है, वस्तुओं को सचमुच बदल देना।

व्यक्ति कौशल भी प्राप्त कर सकता है। ऊपर से यह सब करना काफ़ी आसान है। लेकिन रूपान्तर के लिए नीचे उतरना ही होगा, और यह भयंकर होता है अगर अवतरण न हो तो अवचेतना कभी, कभी भी रूपान्तरित नहीं होगी, वह जैसी थी वैसी हो बनी रहेगी।

अगर कार्य की माँग नहीं होती तो मैं श्रीअरविन्द के साथ ही प्रयाण कर जाती। समझ रहे हो न? मैं केवल कार्य के लिए यहाँ बनी रही- क्योंकि कार्य को सम्पन्न करना ही था और उन्होंने मुझसे कार्य जारी रखने को कहा, और मैं वही कर रही हूँ अन्यथा, जब व्यक्ति सम्पूर्ण रूप से सचेतन होता है, अपने शरीर से बँधा नहीं होता, तब वह एक साथ सौ भिन्न स्थानों पर सौ भिन्न व्यक्तियों से मिल सकता है, ठीक उसी तरह जैसा कि अब श्रीअरविन्द कर रहे हैं।

कोषाणुओं का हर्ष श्रीअरविन्द से तदात्म होना चाहता है

कुछ महीने पहले, जब यह शरीर एक बार फिर से युद्धक्षेत्र बन गया था और हर तरह की बाधाओं का सामना कर रहा था, जब यह अधर-सा था,अपने-आपसे पूछ रहा था, जब बौद्धिक रूपसे भटक नहीं रहा था, लेकिन किसी प्रत्यक्ष ज्ञान की माँग कर रहा था, किसी ठोस वस्तु का स्पर्श करना चाहता था इसकी समझ में नहीं आ रहा था कि यह कहाँ से आयी।अगर हम शरीर रूपी इस एकीकरण से विघटित हो जाएँ, अगर यह संचयन बिखर जाएँ, शारीरिक सीमा हट जाए तो सभी कोषाणु एकदम सीधे, तीर की तरह सीधे, ऊपर निकल जाएंगे। यह एक अद्भुत अग्निशिखा थी- यह श्रीअरविन्द को उनके अतिमानसिक जगत् में मिलने के लिए सीधी ऊपर की और भभक उठी, यह लौ ठीक हमारे द्वार पर स्थिर है। कितना अपूर्व आनन्द था! सभी कोषाणुओं से कितना उत्साह, कितना हर्ष उफन-उफन कर बह रहा था! उन्हें एकदम से कोई परवाह नहीं थी कि वे संगठित रहें या बिखर जाएँ, ओह, वे अनुभव कर रहे थे, कुछ भी हो जाए तो क्या! शरीर के प्रबोधन के कार्य के लिए यह सचमुच एक निर्णायक कदम था। सभी कोशाणु अपने अन्दर ऐसी अलौकिक शक्ति का अनुभव कर रहे थे कि वह जड़मति शक्ति, जो उन्हें हमेशा विलीन और विघटित करने के प्रयास में लगी रहती है- जिससे मृत्यु कहा जाता है, उसके प्रति वे एकदम उदासीन हो गए। बोले हमें कसी की क्या परवाह ? हम वहाँ जाएँगे और सचेतन रूप से श्रीअरविन्द के कार्य में भाग लेंगे। धरती को रूपान्तरित करने के कार्य में। एक या दूसरे तरीके से, यहाँ, वहाँ, इस तरह, उस तरह-उससे कुछ आता-जाता नहीं, हम तो बस उनके कार्य में तन-मन से हिस्सा लेंगे। यही वह समय था जब मुझे परम पुरुष से आदेश मिला,

जो ठीक यहीं थे, मेरे इतने निकट (श्रीमाँ अपने चेहरे पर हाथों से दबाव डालती हैं)। उन्होंने मुझसे कहा, यही प्रतिज्ञा की गयी है। अब कार्य को सम्पन्न करना ही है।

उनका मतलब वैयक्तिक नहीं बल्कि सामूहिक कार्य से था। अतः स्वाभाविक रूप से, जिस भाँति वह आदेश आया, उसे आनन्द के साथ ग्रहण किया गया और तुरन्त कार्य में उतारा गया।

श्रीअरविन्द ने शरीर त्याग कर जो कार्य किया वह लगभग इसी के तुल्य है, यद्यपि वह कहीं अधिक पूर्ण, यथार्थ और निरपेक्ष था-क्योंकि उन्हें वह अनुभूति हुई थी, उन्हें प्रत्यक्ष ठोस रूप में वह अनुभूति हुई थी मैंने उन्हें देखा, मैंने उन्हें उनके बिस्तर पर अतिमानसिक रूप में देखा। उन्होंने लिखा है। मैं इसे व्यक्तिगत रूप से, यानी अपने लिए नहीं बल्कि सारे संसार के लिए कर रहा हूँ और मेरे लिए भी एकदम से यही बात थी-ओह,वह अनुभूति! उसके बाद मेरे लिए किसी चीज का कोई मूल्य नहीं था मनुष्य, यह पृथ्वी यहाँ तक कि इस पृथ्वी का भी मेरे लिए एकदम से कोई महत्त्व नहीं रहा।

एक शिष्य के साथ श्रीमाँ के वार्तालाप से

अग्निशिखा,अप्रैल 2017

छोटा बड़ा कुछ नहीं

निश्चय ही काम के बड़े और छोटे होने का विचार आध्यात्मिक सत्य के लिए एकदम विजातीय है। आध्यात्मिक दृष्टि से न कोई चीज़ बड़ी है न छोटी। ऐसे विचार पढ़े-लिखे उन लोगों के विचारों जैसे हैं जो सोचते हैं कि कविता लिखना तो बड़ा काम है और जूते बनाना या खाना पकाना छोटा और नीचे दर्ज़े का परन्तु आत्मा की दृष्टि में सब समान है- महत्त्व केवल उस आन्तरिक भावना का है, जिसके द्वारा काम किया जाता है। किसी विशेष प्रकार के काम के बारे में भी यही बात है, उसमें छोटा-बड़ा कुछ नहीं।

- श्रीअरविन्द

माताजी के सन्देश

श्रीमाँ

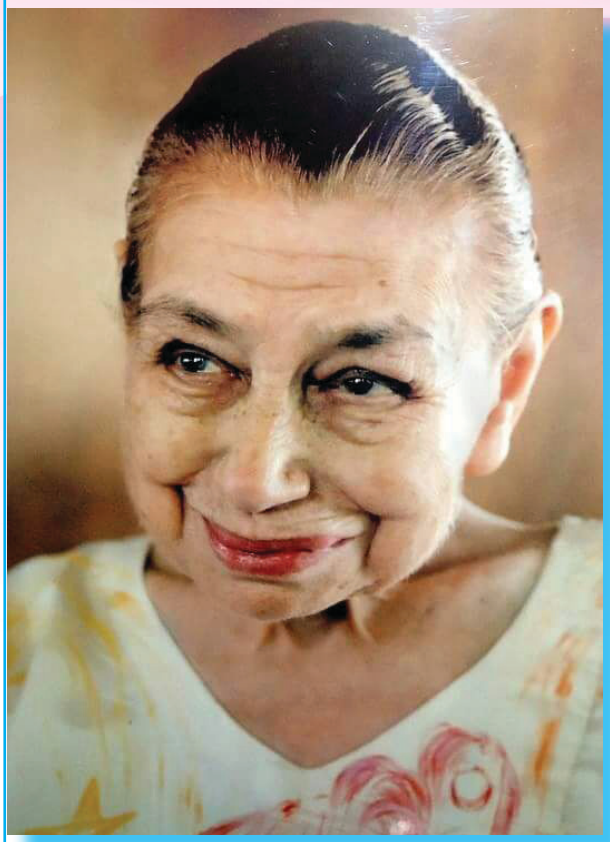

कठिन वक्त पृथ्वी पर आता है। मनुष्य को विवश करने के लिए कि वह क्षुद्र अंहकार से ऊपर उठे और प्रकाश एवं बल प्राप्त करने के लिए भगवान की ओर उन्मुख हो। मानवीय प्रज्ञा अज्ञानजनित होती है, सिर्फ भगवान ही सब कुछ जानते हैं। मनुष्यों के मध्य रहकर भी अपने को एकाकी महसूस करना ही वह चिह्न है कि अब तुम अपने भीतर भगवान की उपस्थिति ढूँढ़ने का प्रयास करो। एक वक्त ऐसा आता है जब जीवन भगवान के सामीप्य के बिना असहाय हो जाता है। ऐसे वक्त पूरी तरह अपने को भगवान को सौंप दो और तुम पुन: उनके प्रकाश में उदित हो उठोगे।

ऐसा होता है कि किसी एक मुहूर्त्त में सहसा कोई यह सोचने लगता है कि वह यहाँ इस पृथ्वी पर बिना कारण, बिना प्रयोजन के नहीं आया है; कि उसे कुछ करना है और वह 'कुछ' उसके अंहकार से पीड़ित नहीं हैं। इस क्षण का पहला प्रश्न है कि मैं यहाँ क्यों हूँ, किस कारण हूँ, मेरे जीवन का क्या अभिप्राय है?

मैं उस दिन की राह देख रही हूँ जब व्यवस्था, अव्यवस्था पर विजय पायेगी और सामन्जस्य पृथकता का स्वामी होगा। जो लोग वर्तमान समय की इन निम्न गतिविधियों से मेरे साथ मिलकर लड़ रहे हैं, उनके साथ मेरी शक्ति और सहायता सधन रुप में है। मैं उनसे यही चाहती हूँ कि वे आश्वस्त रहें, ढ़ृढ़ रहें, सहन करें।

सत्य की विजय होगी।

ओह! तुम लोग कब जागोगे?

इस जड़ता को विच्छिन्न करोगे?

अज्ञान को अपने से दूर करोगे?

इस दिव्य रोशनी का स्पर्श पाकर

सत्य जीवन में डुबकी लगाओगे?

कब? कब वह सौभाग्यशाली और अदभुत दिवस आयेगा?

जिन्दगी की कहानी

टॉल्सटॉय की प्रसिद्ध कहानी है कि एक आदमी के घर एक सन्यासी एक परिव्राजक अतिथि आया। रात गपशप होने लगी, उस परिव्राजक ने कहा कि तुम यहाँ क्या छोटी-मोटी खेती में लगे हो। जब मैं साइबेरिया की यात्रा में था तो मैंने देखा, वहाँ जमीन इतनी सस्ती है, लगभग मुफ्त ही मिलती है। तुम यह जमीन बेच-बाचकर साइबेरिया चले जाओ। वहाँ तुम्हें हजारों एकड़ जमीन मिल जाएगी इसी जमीन की कीमत में। वहाँ जा कर खेती करो। वहाँ की जमीन बहुत उपजाऊ है और वहाँ के लोग इतने सीधे-साधे हैं कि करीब-करीब मुफ्त ही जमीन दे देते हैं।

उस आदमी की कामना जगी, उसने दूसरे दिन ही सब बेच-बाचकर साइबेरिया की राह पकड़ी। जब वहाँ पहुँचा तो उसे परिव्राजक की बात में सच्चाई दिखी। उसने वहाँ के लोगों से कहा कि मैं जमीन खरीदना चाहता हूँ। क्या आप बता सकते हैं कि यहाँ जमीन की दर क्या है?

उन्होंने कहा, यहाँ कोई निश्चित दर नहीं है, तुम जितना पैसा लाए हो यहाँ रख दो; और कल सुबह सूरज के उगते ही तुम निकल पड़ना और साँझ को सूरज के डूबने तक जितनी जमीन तुम घेर सको घेर लेना।

याद रखना, सूरज के डूबने तक तुम्हें इसी जगह पर लौटना होगा जहाँ से चले थे, बस यही शर्त है। जितनी जमीन तक तुम चलोगे, उतनी जमीन तुम्हारी हो जाएगी।

रात-भर सो न सका वह आदमी । अगर तुम भी होते तो न सो सकते; ऐसे क्षणों में कोई सोता है? रातभर योजनाएँ बनाता रहा कि कितनी जमीन घेर लूँ। सुबह ही भागा। गाँव इकट्ठा हो गया था और सुबह जैसे ही सूरज निकला, वह भागा। उसने अपने साथ रोटी भी ले ली थी, पानी का भी इंतजाम कर लिया था। रास्ते में भूख लगे, प्यास लगे तो सोचा था चलते-चलते खाना भी खा लूंगा, पानी भी पी लूँगा। रूकना तो है नहीं अधिक से अधिक जमीन जो घेरनी है। वह चल पड़ा, चलना क्या; दौड़ना शुरू किया, क्योंकि चलने से तो आधी ही जमीन घेर पाऊँगा, दौड़ने से जमीन दुगनी हो सकेगी-वह भागा...,भागा...,भागता ही गया...।

सोचा था कि ठीक बारह बजे लौट पड़ूँगा; ताकि सूरज डूबते-डूबते वापस पहुँच जाऊँ। बारह बज गए, मीलों चल चुका था, मगर वासना का भला कोई अंत है? उसने सोचा कि बारह तो बज गए, लौटना चाहिए; लेकिन सामने और उपजाऊ जमीन, और उपजाऊ जमीन... थोड़ी सी और घेर लूँ। जरा तेजी से दौड़ना पड़ेगा लौटते समय-इतनी सी ही तो बात है, एक ही दिन की तो बात है, और जरा तेजी से दौड़ लूँगा। उसने पानी भी नहीं पीया; क्योकि रूकना पड़ेगा एक दिन की ही तो बात है, कल पी लेंगे पानी, फिर जीवन भर पीते रहेंगे। उस दिन उसने खाना भी न खाया। उसने खाना भी फेंक दिया, पानी भी फेंक दिया, क्योंकि उनका वजन भी ढोना पड़ रहा था, इसलिए ठीक से दौड़ नहीं पा रहा था। उसने अपना कोट भी उतार दिया, अपनी टोपी भी उतार दी, जितना निर्भार हो सकता था हो गया।

एक बज गया, लेकिन लौटने का मन नहीं होता था, क्योंकि आगे और भी सुन्दर भूमि थी। मगर फिर लौटना ही पड़ा; दो बजे तक वो वापस मुड़ा। अब वह घबड़ाया। सारी ताकत लगाई; लेकिन ताकत तो चूकने के करीब आ गई थी। सुबह से दौड़ रहा था, हाँफ रहा था, घबरा रहा था कि सूरज डूबने तक पहुँच पाऊँगा कि नहीं। सारी ताकत लगा दी, पागल की तरह दौड़ा, सब दाँव पर लगा दिया था। सूरज डूबने लगा था और तेज दौड़ा, ज्यादा दूरी भी नहीं रह गई थी, उसे लोग दिखाई देने लगे, गाँव के लोग खड़े थे और आवाज दे रहे थे कि आ जाओ, आ जाओ, उत्साह दे रहे थे। भागे आओ। अजीब सीधे सादे लोग हैं वह सोचने लगा। इनको तो सोचना चाहिए कि मैं मर ही जाऊँ तो इनको धन भी मिल जाए और जमीन भी न जाए, मगर

ये मुझे उत्साह दे रहे हैं कि भागे आओ।

उसने आखिरी दम लगाया, भागा-भागा..भागता गया...। सूरज डूबने लगा; इधर सूरज डूब रहा था, उधर वो भाग रहा था...। सूरज डूबते-डूबते बस वह जाकर गिर पड़ा। कुछ पाँच-सात गज की दूरी रह गई थी, अब वह घिसट रहा था।

अभी सूरज की आखिरी किरण क्षितिज पर रह गई थी, और जब उसका हाथ जमीन के उस टुकड़े पर पहुँचा, जहाँ से वह भागा था, तभी सूरज डूब गया! वहाँ सूरज डूबा, यहाँ यह आदमी भी मर गया। इतनी मेहनत कर ली थी, शायद हृदय का दौरा पड़ गया था। सारे गाँव के लोग जिनको वह सीधा-सादा समझ रहा था, हँसने लगे और एक दूसरे से बात करने लगे।

इस तरह के पागल लोग आते ही रहते हैं। यह कोई नई घटना न थी, अक्सर लोग आ जाते थे, खबरें सुनकर, और इसी तरह मरते थे। यह कोई अपवाद नहीं था। यही होता था, लालच के कारण शायद ही कोई ऐसा होगा जो इस तरह जमीन का मालिक बन पाया हो।

यह कहानी हम मनुष्यों की कहानी है, हमारी जिंदगी की कहानी है, सबकी जिदंगी की कहानी है। यही तो हम कर रहे हैं ,दौड़ रहे हैं कि कितनी जमीन घेर ले। जीवन में बारह भी बज जाते हैं, दोपहर भी आ जाती है, लौटने का भी समय होने लगता है मगर थोड़ा और दौड़ लें, न भूख की फिक्र है, न प्यास की फिक्र है।

जीने का समय कहाँ है? पहले जमीन घेर लें, पहले तिजोरी भर लें, पहले बैंक में रूपया इकट्ठा हो जाए, फिर जी लेंगे, एक ही दिन का तो मामला है और कभी कोई नहीं जी पाता। गरीब मर जाते हैं भूखे, अमीर मर जाते हैं भूखे, कभी कोई नहीं जी पाता। जीने के लिए थोड़ी समझ चाहिए। जीवन मुफ्त नहीं मिलता।

श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द धरती पर पुराने मतों अथवा पुरानी शिक्षाओं के साथ प्रतियोगिता करने के लिए, कोई शिक्षा या मत लाने के लिए नहीं आये हैं। वे अतीत को पार करने का तरीका दिखाने और सन्निकट और अनिवार्य भविष्य के लिए मूर्त रूप में मार्ग बनाने आए हैं। श्रीअरविन्द अतीत के नहीं हैं और न इतिहास के ही हैं। श्रीअरविन्द चरितार्थ होने के लिए आगे बढ़ता हुआ भविष्य हैं।

श्रीमाँ

कर्मधारा 1997

श्रीअरविन्द विदेशियों की दृष्टि में

ड़ा.सुरेशचन्द्र त्यागी

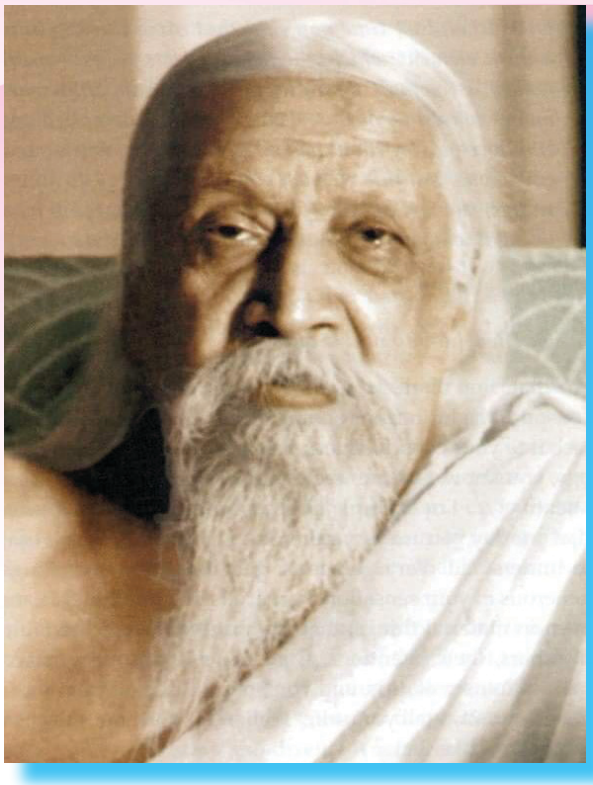

भारत के ही नहीं, विश्व के बौद्धिक एवं आध्यात्मिक नेताओं में अग्रगण्य श्रीअरविन्द के विचारों का प्रकाश विज्ञापन और प्रचार के अभाव में भी देश की सीमाओं को लाँघता हुआ संसार के कोने-कोने में फैल रहा है। सभी देशों के विचारकों ने उनकी महत्ता स्वीकार की है। सन् 1949 में भारत सरकार ने एक प्रेस नोट जारी किया था कि संसार के विभिन्न भागों- विशेषतः अमरीका से श्रीअरविन्द और उनके आश्रम के बारे में पूछताछ के लिए अनेक पत्र आ रहे हैं। अनुमान किया जा सकता है कि ऐसे जिज्ञासुओं की संख्या अब कितनी हो गयी होगी। अमरीकी विश्वविद्यालयों के शिक्षक तथा अन्य चिन्तक अपनी वैचारिक और व्यावहारिक समस्याओं के समाधान के लिए श्रीअरविन्द के विविध रूपों पर शोध कार्य कर रहे हैं तथा पाठयक्रम में उनके ग्रन्थ स्वीकृत हैं।

स्टेनफोर्ड विश्वविद्यालय केलिफिर्निया के डॉ.फेडरिक स्पीगेलबर्ग सन् 1949 में भारत आये थे। उन्होंने श्रीअरविन्द के विषय में कहा था "मैं उस दिन का अनुमान कर सकता हूँ जब भारत की महानतम आध्यात्मिक वाणी-श्रीअरविन्द की शिक्षाएँ, जो पहले ही प्रगति के पथ पर हैं, सारे अमरीका में जानी जाएँगी और प्रकाश की अपार शक्ति बनेंगी।" तथा "मैं श्रीअरविन्द की महानता को केवल इस युग तक सीमित नहीं करूँगा। प्लेटों, स्पिनोजा, कान्ट और हीगेल भी हुए हैं लेकिन उनमें वैसी सर्वग्राही अलौकिक संरचना, वैसी अन्तर्दृष्टि नहीं है।" फरवरी1936 में श्रीअरविन्द से मिलने पर डॉ. बासवेल की भी ऐसी ही प्रतिक्रिया थी।

हारवर्ड विश्वविद्यालय के विश्वप्रसिद्ध समाजशास्त्री सोरोकिन ने श्रीअरविन्द का विशेष अध्ययन किया है और अपने ग्रन्थों में प्रसंगानुसार उनकी चर्चा की है। उनके शब्दों में, "वैज्ञानिक एंव दार्शनिक दृष्टिकोण से श्रीअरविन्द की रचनाएँ पश्चिम के छद्म वैज्ञानिक मनोविज्ञानिक, मनोविकृति-विज्ञान और शैक्षिक कला की सही प्रतिकारक हैं।

श्रीअरविन्द की दिव्य जीवन ['द लाइफ डिवाइन'] तथा दूसरी योग सम्बन्धी पुस्तकें हमारे युग की दर्शन, नीति एवं मानविकी विषयों की सर्वाधिक महत्वपूर्ण कृतियों में से हैं।

श्रीअरविन्द स्वयं हमारे युग के महानतम जीवित मनीषियों में श्रेष्ठतम नेता हैं। साइरेक्यूज विश्यविद्यालय के दर्शन विभाग के प्रोफेसर, विख्यात विचारक एवं कला-समीक्षक रेमंड एफ. पाइपर ने लिखा है कि श्रीअरविन्द का एक-एक वाक्य ज्ञान के नये-नये लोकों को उद्घाटित करने वाला है उन्होंने कहा है- "मैंने कभी ऐसे लेखक का अध्ययन नहीं किया जो श्रीअरविन्द की तरह इतने अधिक सत्य को एक वाक्य में समाहित कर सके। गाँधी महानतम सन्त हैं और टैगोर आधुनिक भारत के महानतम कवि, लेकन श्रीअरविन्द महानतम विचारक हैं। वस्तुतः उन्होंने कवि, दार्शनिक और सन्त के रूप में अप्रतिम

त्रिविध महानता प्राप्त की है"

श्रीअरविन्द के महाकाव्य 'सावित्री' के बारे में डॉ. पाइपर ने अपनी पुस्तक 'दि हंग्री आइ' (The Hungry Eye) में विस्तार से लिखा है। उनकी दृष्टि में 'सावित्री' अंगरेजी भाषा का महानतम महाकाव्य और अद्वितीय सौन्दर्य से परिपूर्ण कृति है।

संयुक्त राज्य अमेरिका के डेलावेयर विश्वविद्यालय के दर्शन विभाग के अध्यक्ष बरनार्ड फिलिप्स सन् 1951 में श्रीअरविन्द आश्रम पधारे थे। अपने भाषण में उन्होंने कहा था कि शिक्षा की वर्तमान प्रणालियाँ मनुष्य के व्यक्तित्व का पूर्ण विकास नहीं करतीं। श्रीअरविन्द का पथ नवीन मानवता के विकास का नेतृत्व करेगा।

सन् 1950 में श्रीअरविन्द के प्रसिद्ध ग्रन्थों का अमरीका में प्रकाशन होने से उनके विचारों के प्रसार में बहुत बड़ी मदद मिली। मैक्सिकों और कनाडा में भी श्रीअरविन्द अध्ययन केन्द्र हैं। सन् 1954 में ब्राजील में हुई दर्शन की अन्तर्राष्ट्रीय कांग्रेस के कार्यक्रम में श्रीअरविन्द पर विशेष विचार हुआ था। चिली निवासी नोबल पुरस्कार विजेता गैब्रियल मिस्ट्राल ने लिखा है कि "टैगोर ने यदि मेरे भीतर निहित संगीत को जगा दिया तो श्रीअरविन्द ने मुझे कर्म के प्रति जागरुक कर दिया। उन्होंने मेरे धार्मिक प्रतिष्ठान का मार्ग प्रशस्त कर दिया ।

वस्तुतः मैं भारत की बहुत ऋणी हूँ- कुछ तो टैगोर के कारण और कुछ श्रीअरविन्द के कारण।" इन्होंने ही सन् 1950 के नोबल पुरस्कार के लिए श्रीअरविन्द का नाम प्रस्तुत किया, जिसका अनुमोदन पर्ल एस.बक द्वारा किया गया था।

अमेरीका में ही नहीं, यूरोपीय देशों में भी श्रीअरविन्द की महत्ता स्वीकार की गयी है। ई. एफ.एफ.हिल ने अक्टूबर 1949 में 'वर्ल्ड रिव्यू' में लिखा था कि श्रीअरविन्द सबसे महान समकालीन दार्शनिक हैं और सब युगों के महानतम रहस्यवादियों में महान हैं। श्रीअरविन्द की मनोवैज्ञानिक अन्तर्दृष्टि इतनी तीक्ष्ण और स्पष्ट है कि उनकी तुलना में पश्चिमी मनोविज्ञान , यहाँ तक कि फ्रॉयड का कार्य भी ऐसा लगता है जैसे कोई बच्चा अँधेरे में कुछ टटोल रहा हो।

श्रीअरविन्द भारत की विगत आध्यात्मिक उपलब्धि के जीवन्त रूप हैं और उसकी भावी आध्यात्मिक नियति के सर्वप्रमुख नेता हैं। उन्होंने लिखा है- "हम मानव के आध्यात्मिक इतिहास में महत्त्वपूर्ण मोड़ पर हैं।श्रीअरविन्द मानव जीवन में उस क्रान्ति के मूर्त रूप हैं जिसका निर्माण इस समय नवीन ज्ञान, नवीन शक्तियों और नवीन क्षमताओं द्वारा हो रहा है।"

प्रख्यात अंग्रेजी विचारक और लेखक फ्रांसिस यंगहस्बैंड ने सन1944 में 'टाइम्स लिटरेरी सप्लीमेंट' में 'दि लाइफ डिवाइन'का रिव्यू करते हुए श्रीअरविन्द के दार्शनिक व्यक्तित्व की बहुत गम्भीर समीक्षा की थी। उन्होंने लिखा था कि आधुनिक भारतीय लेखकों में श्रीअरविन्द क्रमशः कवि, समीक्षक, विद्वान, विचारक, राष्ट्रवादी, और मानवतावादी, रूपों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण औऱ कदाचित सर्वाधिक रुचिकर हैं। वस्तुतः वे एक नये प्रकार के विचारक हैं जिन्होंने अपनी अन्तर्दृष्टि में पश्चिम की स्फूर्ति और पूर्व के प्रकाश का समन्वय किया है। उनकी कृतियों को पढ़ने का अर्थ है ज्ञान की सीमाओं का विस्तार करना।

प्रसिद्ध आयरिश लेखिका मोरवेना डोनेली ने श्रीअरविन्द की दार्शनिक विचारधारा के बारे में 'फाउन्डिंग द लाइफ डिवाइन' पुस्तक लिखी है जिसकी प्रशंसा सभी पत्र-पत्रिकाओं ने मुक्तकण्ठ से की है। मोरवेना डोनेली का विचार है कि आज विश्व में श्रीअरविन्द से अधिक महान विचारक और कोई नहीं है। सन् 1949 में प्रकाशित जी.एच.लेंगले की पुस्तक 'श्रीअरविन्द 'का ब्रिटिश पत्रों ने सहृदयतापूर्वक स्वागत किया था। प्रसिद्ध लेखक डोरोथी एम रिचर्डसन ने एक पत्र में श्रीअरविन्द के समन्वयकारी व्यक्तित्व पर आश्चर्य व्यक्त किया था। एच.डी.लेविस ने अपनी पुस्तक 'फिलोसफी ऑफ रिलीजन' में श्रीअरविन्द की बहुत प्रशंसा की है। हरबर्ट रीड ने श्रीअरविन्द के महाकाव्य 'सावित्री' को हर दृष्टि से महान बतलाया है। लन्दन में श्रीअरविन्द के प्रशंसकों का स्वाध्याय केन्द्र है जहाँ उनकी कृतियों का मनन होता है।

लीड्स विश्वविद्यालय के वाइस-चांसलर सर चार्ल्स आर.मोरिस ने श्रीअरविन्द को 'महान, कवि, लेखक और भारतीयों का मुक्तिदाता' कहकर अपनी भावना व्यक्त की है।

यूरोपीय देशों में फ्रांस में श्रीअरविन्द के दिव्य जीवन के सिद्धान्त में सर्वाधिक रुचि दीख पड़ती है। रोमारोला ने श्रीअरविन्द को ऋषि परम्परा में अन्तिम, जगत का शिक्षक और समन्वयकर्ता कहा है। उनके विचार में पश्चिम व पूर्व की प्रतिभा का पूर्णतम सामंजस्य श्रीअरविन्द ने किया है।

श्रीअरविन्द के देह-त्याग पर फ्रांस के पत्रों ने श्रीअरविन्द पर विस्तार से लेख प्रकाशित किये थे। फ्रेंच अकादमी के सदस्य आन्द्री सगफ्रेड ने श्रीअरविन्द को वैदिक ऋषियों की परम्परा में मानते हुए उनके देहावसान को राष्ट्रीय ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय घटना कहा था। पेरिस की श्रीअरविन्द सोसाइटी की ओर से समय-समय पर गोष्ठियाँ होती रहती हैं। एक सांस्कृतिक मासिक के सम्पादक जे. मासुइ ने कहा था कि यदि श्रीअरविन्द के विचारों की तुलना पश्चिम के तत्व-चिन्तकों से की जाये तो यही कहा जा सकता है कि जहाँ हीगेल पहुँचता है, वहाँ से श्रीअरविन्द उड़ान भरते हैं और हीगेल को पीछे छोड़ देते हैं। उसके शब्दों में, "मेरा विचार है कि टैगोर की यह भविष्यवाणी कि भारत श्रीअरविन्द की वाणी में संसार को अपना संदेश सुनाएगा पूर्णरूप से सच होने के पथ पर है।" फ्रेंच में श्रीअरविन्द की प्रमुख कृतियों का अनुवाद हुआ है और हो रहा है। आश्रम में फ्रांसीसी साधक श्री सतप्रेम की पुस्तक 'श्रीअरविन्द एण्ड दि एडवेंचर ऑफ कॉन्शसनेस' का फ्रांस में अभूतपूर्व स्वागत हुआ है। इसका अंग्रेज़ी रूपान्तर भी छप चुका है और जर्मन तथा इटैलियन संस्करण भी इन देशों में लोकप्रिय हो चुके हैं। फ्रांस के विश्वविद्यालयों में श्रीअरविन्द पर अनेक शोध-प्रबन्ध स्वीकृत हुए हैं।

श्रीअरविन्द की कृतियों के जर्मन अनुवादों की जर्मनी में बहुत माँग है। अनेक जर्मन विश्वविद्यालयों में श्रीअरविन्द पर सेमिनार आयोजित होते रहते हैं। जर्मनी में अनेक केन्द्र हैं जहाँ श्रीअरविन्द की कृतियों पर विचार-विमर्श होता है। प्रसिद्ध जर्मन विचारक ओ.वोल्फ की श्रीअरविन्द एवं उनकी शिक्षा से सम्बद्ध पुस्तक ने वहाँ अच्छी प्रसिद्धि पायी है। इसी तरह स्विटजरलैंड का श्रीअरविन्द-केन्द्र वहाँ सेमिनार आदि का अयोजन करता रहता है। रूस में भी श्रीअरविन्द की रचनाएँ पढ़ी जाती हैं।

अप्रैल 1956 में रूसी जिमनास्टों का दल आश्रम आया था। श्रीमाँ ने उस अवसर पर कहा था कि हमें विश्वास है आज मानव परिवार में एकता की ओर एक पग और बढ़ाया गया है। इसी तरह जिन देशों में भी भरतीय संस्कृति और परम्परा का अध्ययन होता है, वहीं श्रीअरविन्द का व्यक्तित्व अमिट प्रभावशाली सिद्ध होता है।

पूर्वी अफ्रिका के अनेक नगरों में श्रीअरविन्द स्वाध्याय केन्द्र स्थापित किये गए हैं जहाँ श्रीअरविन्द की विचारधारा के प्रति आकृष्ट लोग एकत्र होकर चिन्तन-मनन करते हैं। इज़रायल की हिब्रू युनिवर्सिटी में श्रीअरविन्द के विशेष अध्येता लूगो वर्गमैन ने अनेक लेख लिखकर वहाँ उनके महत्व को प्रतिपादित किया है। एक विद्वान सावित्री का हिब्रू में अनुवाद कर रहे हैं।

चीनी विद्वान तान-युग ज्ञान सन 1939 में आश्रम आए थे। श्रीअरविन्द के दर्शन कर उन्होंने कहा था कि जिस प्रकार भूतकाल में एक महान भारतीय ने चीन पर आध्यात्मिक विजय पायी थी, उसी प्रकार भविष्य में भी वह दूसरे महान भारतीय श्रीअरविन्द द्वारा जीता जाएगा। तान-युग-ज्ञान के शब्दों में, श्रीअरविन्द उस प्रकाश के वाहक हैं जो आज जगत् को ढकनेवाले अन्धकार को भगा देगा। तान–युग-ज्ञान ने अनेक लेख श्रीअरविन्द के विषय में लिखे जो प्रसिद्ध चीनी पत्रिकाओं में छपे थे। सन् 1954 में हाँगकाँग में श्रीअरविन्द दर्शन-चक्र की स्थापना हुई। इसके उद्घाटन समारोह में अनेक चीनियों ने भाग लिया। इस अवसर पर अपने सन्देश में श्रीमाँ ने कहा था कि शाश्वत प्रकाश का पूर्वी क्षितिज पर उदय हो। चीनी भाषा में श्रीअरविन्द की कई पुस्तकों का अनुवाद हो चुका है जो आश्रम से ही छपा है। ओसाका, जापान में श्रीअरविन्द सोसाइटी का केन्द्र है जहाँ नियमित कार्यक्रम होते रहते हैं।

उन सब व्यक्तियों का उल्लेख करना कठिन ही है जो श्रीअरविन्द के विचारों का प्रकाश लेकर जीवन-पथ पर बढ़ रहे हैं। श्रीअरविन्द आश्रम और निर्माणाधीन उषा-नगरी (ऑरोविल) में विभिन्न देशों के नागरिकों को कार्यरत देखकर विश्वैक्य और मानव-एकता का जो स्वरूप सामने आता है, वह अभिनन्दनीय है। मानव-मानव के बीच की अस्वाभाविक दीवार टूटने पर ही सच्ची एकता का अनुभव होता है। श्रीअरविन्द ने स्वयं लिखा है-"जब हम भगवान को अनुभव करते हैं और दूसरों को भगवान में अनुभव करते हैं, तभी सच्चा सामंजस्य आता है।"

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा 1972

जीवन एक गति है

जीवन एक गति है, वह एक प्रयास है,आगे की ओर बढ़ना है, पर्वत पर आरोहण है, ऊँची जानकारियों तथा भावी सिद्धियों के प्रति अभियान है। विश्राम करने की इच्छा करने से अधिक खतरनाक और कोई चीज नहीं है। सच्चा विश्राम भागवत कृपा पर पूर्ण विश्वास, कामनाओं का अभाव और अहंकार के ऊपर विजय है।

श्रीमाँ

श्रीअरविन्द का महाप्रयाण

प्रभात सान्याल

दिसम्बर चार- श्रीअरविन्द का बुखार 99 डिग्री पर आ गया था। साँस लेने में कष्ट अधिक नहीं था और वह प्रसन्नचित एवं अनुकूल प्रतिक्रियाशील लग रहे थे। सुबह के कार्यों से निवृति के बाद हमने उनको बैठा दिया था। वह विराजमान थे - तेजस्वी और शांत! करीब नौ बजे श्रीमाँ आईं और उन्होंने हल्का नाश्ता लेने में श्रीअरविन्द की मदद की। वह हमेशा की तरह विचार-विमर्श के लिए साथ के कमरे में गईं, मैं उनकी ओर देखकर मुस्कराया और कहा - "गुरुदेव फिर प्रसन्न लग रहे हैं और दिलचस्पी ले रहे लगते हैं। "श्रीमाँ का उत्तर मात्र यह था -'हाँ!' और वह कमरे से बाहर चली गईं।

मैं शय्या के निकट बैठ गया और गुरुदेव के शरीर पर धीरे-धीरे मालिश करने लगा। निरोद और चम्पकलाल अपने-अपने कामों में लग गए। थोड़ी देर बाद अपने आँखे खोलीं और समय पूछा। मैंने कहा - दस बजे हैं। मुझे लगा कि वह बात करने के मूड में हैं तो मैंने साहस किया-"कैसा महसूस कर रहे हैं?" वह मुस्कराये - "मैं आराम से हूँ। " फिर वह कुछ रुके और पूछा कि बंगाल में कैसा चल रहा है -शरणार्थियों के बारे में क्या हो रहा है ? मैंने उनकी दयनीय दशा के बारे में बतलाया और प्रार्थना की-" निश्चय ही भगवान उनकी मदद कर सकते हैं ?" मेरे स्वामी ने उत्तर दिया-" हाँ, यदि बंगाल भगवान को चाहे तो। "उन्होंने अपनी आँखे मूँद ली और शांति (समाधि) में चले गये। लेकिन हाय ,यह मात्र अल्पकालीन शांति थी, एक मिथ्या आशा। दोपहर से सांस लेने में कठिनाई फिर और अधिक बढ़ गई और बुखार 102 डिग्री तक पहुंच गया। इस बार कष्ट के चिह्न उनके चेहरे पर देखे जा सकते थे लेकिन एक भी शब्द नहीं, तनिक भी विरोध नहीं। लगभग एक बजे श्रीमाँ आईं। मेरे साथ निकट के कमरे में जाने से पहले वह कुछ समय तक देखती रहीं। तब उन्होंने कहा - "वह पीछे हट रहे हैं (He is withdrawing)"।

यद्यपि श्रीअरविन्द ऊपरी तौर से अचेत लग रहे थे लेकिन जब उन्हें पीने के लिए कुछ पेश किया जाता था तो वह जाग जाते थे, कुछ घूंट लेते थे और अपने रुमाल से स्वयं ही मुख पोछ लेते थे । हम सबको आभास होता था कि चेतना बाहर से आई है जो वह लगभग सामान्य हो गये हैं और फिर पीछे हट जाते थे, शरीर में कम्पन्न आता था और वह कष्ट में डूब जाता था। अब वह वहाँ नहीं थे !

पांच बजे के आसपास उन्होंने सुधार के लक्षण दिखलाये। वह नितांत प्रतिक्रियाशील हो गए थे। हमने उन्हें बिस्तर से उठने में मदद दी। जिसके बाद वह आराम के लिए आरामकुर्सी तक चलकर पहुँचे। उस क्षण उनका व्यक्तित्व कुछ और ही प्रतीत हुआ। वह अपनी आँखें बंद कर वहाँ बैठ गए-विकीरणकारी चेतना से युक्त शांत एवं प्रकृतिस्थ जब वह वहाँ विराजमान हुए तो, हमने देखा उनकी रूपाकृति का तेजस्वी सौन्दर्य! ऐसी शांति और परमानंद से मेरे मन में वैदिक ऋषियों के चित्र उभर आये। लेकिन यह स्थिति देर तक नहीं रही। पौन घंटे के बाद वह बेचैन हो उठे। उन्होंने वापस बिस्तर पर जाना चाहा। दुगने वेग से साँस लेने में कष्ट प्रकट हो उठा। दोपहर के बाद पेशाब, जो इन दिनों ठीक हो रहा था,निश्चित रूप से कम हो गया और तकलीफ बहुत स्पष्ट होने लगी। यद्पि वह अचेत प्रतीत हो रहे थे लेकिन थे नहीं। यह इस बात से स्पष्ट था कि उन्होंने अनेक बार चम्पकलाल को अपने सीने से लगाया और स्नेहपूर्वक उन्हें चूमा। भागवत करुणा का यह आलिंगन निरोद को और मुझे भी मिला। कहा जा सकता है कि यह संवेदनापूर्ण व्यवहार पहली बार यहां व्यक्त हो रहा था। उन्होंने सारे दिन कुछ भी नहीं पीया।

प्लेग्राउन्ड में अपनी उपस्थिति के बाद श्रीमाँ वापस लौट आई थीं। उन्होंने शय्या के पायताने अपनी माला रखी - रोजाना

की तरह और श्रीअरविन्द की ओर देखते हुए खड़ी रहीं। वह इतनी शांत और गंभीर दिखलाई दे रही थीं कि इसने मुझे व्यथित कर दिया। मैं उनकी प्रतीक्षा के लिए निकट के कमरे में गया। वह वहाँ आई। मैंने उन्हें रिपोर्ट बतायी कि सत्य ने गलूकोज दिया है और हम अंतःशिरा चिकित्सा का प्रबंध करना चाहते हैं। उन्होंने शन्तिपूर्वक और दृढ़ता से कहा - "मैंने तुम्हें कहा है कि उनकी अपने आप में कोई दिलचस्पी नहीं है। वह पीछे हट रहे हैं। "

हम श्रीअरविन्द की शय्या के चारों ओर बैठ गये - यह जानने के लिए उत्सुक कि वह अपने आपमें दिलचस्पी क्यों खो रहे हैं ?

यदि वह चाहें तो निश्चित रूप से स्वयं को ठीक कर सकते हैं जैसा कि उन्होंने अनेक दूसरे अवसरों पर किया है। निरोद ने उन्हें दूसरो की बीमारियां ठीक करते हुआ देखा है। लेकिन इस कठिन घड़ी में उनकी स्वयं में कोई रुचि नहीं है। क्या वह अपना उत्सर्ग करने जा रहे हैं ?

रात को करीब ग्यारह बजे श्रीमाँ कमरे में आईं और आधा कप टमाटर का रस पीने के लिए उन्होंने श्रीअरविन्द की मदद की। एक विलक्षण दृश्य! जो शरीर अभी घोर व्यथा में था , कोई उत्तर नहीं दे रहा था, साँस लेने के लिए कड़ा परिश्रम कर रहा था, अचानक शांत हो जाता है, एक चेतना उसमें प्रवेश कर जाती है। वह जागरुक और सामान्य हो गये। उन्होंने रस पीया। फिर जैसे ही चेतना पीछे हटी, शरीर फिर यंत्रणा की पकड़ में चला गया।

आधी रात के समय श्रीमाँ फिर कमरे में आईं, कुछ देर के लिए एकाग्रतापूर्वक देखा, मानो दोनों के बीच चुपचाप विचार का आदान-प्रदान हुआ हो; फिर वह चली गईं।

एक बजे (5 दिसम्बर) वह लौटीं और फिर श्रीअरविन्द को देखा और शय्या के पायताने की ओर खड़ी रहीं। यंत्रणा, भय या चिन्ता का कोई चिह्न उनके चेहरे पर नहीं था। मुझे उनकी मुद्रा में किसी विचार, किसी भाव की थाह नहीं मिली। उन्होंने अपनी आँखों से मुझे निकट के कमरे में जाने को कहा। वह मेरे पीछे आई और पूछा - "तुम क्या सोचते हो ? क्या मैं एक घंटे के लिए चली जाऊँ ?" यह महत्वपूर्ण घड़ी थी। श्रीमाँ चली गईं-उनकी चेतना ने उनके शरीर को छोड़ दिया। तब उन्हें बुलाने या उनके कमरे में किसी को नहीं जाना था। यह उनका अनिवार्य आदेश था। मैं बड़बड़ाया-" श्रीमाँ, यह मेरे वश के परे। " उन्होंने कहा - "जब समय आये तो मुझे बुला लेना। "

मैं गुरुदेव के पीछे खड़ा हो गया और केशों को सहलाने लगा जो वह हमेशा पसंद करते थे। निरोद और चम्पकलाल शय्या के बगल में बैठ गए और श्रीअरविन्द के चरणों को चूमने लगे। हम सब शांतिपूर्वक उनको देख रहे थे। अब हम जानते थे कि किसी भी क्षण कुछ भी हो सकता है, केवल कोई चमत्कार ही हमें और दुनिया को बचा सकता है। मुझे उनके शरीर में हल्के से कम्पन का बोध हुआ, लगभग अप्रत्यक्ष-सा। उन्होंने अपनी बांहें ऊपर कीं और उन्हें ऊपर रखा, एक के ऊपर एक, और बसस, सब कुछ थम गया। मृत्यु-निर्दय मृत्यु जो बहुत देर से प्रतीक्षा कर रही थी और हम जिसके लिए चौकस बने हुए थे, हमारे प्रभु के ऊपर उतर आई थी। उनकी साँस थम गई। मैंने निरोद से कहा कि श्रीमाँ को ले आयें। तब एक बजकर बीस मिनट हुए थे।

तुरंत ही श्रीमाँ ने कमरे में प्रवेश किया। वह वहां श्रीअरविन्द के चरणों के पास खड़ी हो गईं। उनके केश खुले हुए थे और कन्धों के आसपास लहरा रहे थे। उनकी दृष्टि इतनी उग्र थी कि मैं उन नेत्रों का सामना नहीं कर सका। बेधक टकटकी लगाए श्रीमाँ वहां खड़ी थीं। ठीक एक बजकर छब्बीस मिनट पर मैंने उनकी ओर देखा और कहा-सब खत्म हो गया। चम्पकलाल यह सहन नहीं कर सके और सिसकते हुई उन्होंने विनयपूर्वक कहा-" श्रीमाँ, कहें कि डॉक्टर सान्याल सही नहीं हैं ,श्रीअरविन्द जीवित हैं। "श्रीमाँ ने उनकी ओर देखा र वह शांत एवं प्रकृस्थित हो गए जैसे कि जादू की छड़ी ने छू दिया हो। वह वहीं आधा घंटे से अधिक समय तक खड़ी रहीं। मेरे हाथ अभी तक श्रीअरविन्द के मस्तक पर ही थे। मेरा मन घूम रहा था।

यह मेरे गुरदेव लेटे हुए हैं- ऋषि श्रीअरविन्द, प्रभात के ,नवीन युग के अवतार! बीती हुई बात! कुछ ही क्षण पूर्व मैं देख रहा था और किसी चमत्कार की आशा कर रहा था; क्या इसके लिए अन्य कोई उपयुक्त समय हो सकता था! श्रीअरविन्द नहीं रहे। वह अभी जीवित थे, और अब वह इतिहास हो गये हैं। मेरे दिमाग में विचार अनेक रूप बदल रहे थे। मैं शय्या के निकट से गुजरते हुए हजारों लोगों को देख रहा था-जोर से फुसफुसाते हुए- "यहाँ रहते थे श्रीअरविन्द..." । लेकिन यह नहीं हो सकता, मैं उनके पास खड़ा हूँ, मेरे हाथ उनका स्पर्श कर रहे हैं, मैं उन्हें साँस लेते हुए देख रहा हूँ , हाँ, प्रत्येक क्षण-अब सब कुछ कहीं अधिक शांत है। मैं और कुछ सोच नहीं सका। मेरे सिर के आरपार तेज दर्द था। मैंने श्रीमाँ की ओर देखा। वे धीरे से पास आईं, मेरे सिर का स्पर्श किया, मेरे विचारों को शांत किया, मेरे मन को शांत किया, मेरे मन को निश्चल किया। व्यथा का कोई चिह्न बाकि नहीं रहा। अब मैं सामान्य ढंग से सोच सकता था। मैंने उनसे पूछा- क्या करना चाहिये, अब हमें अंतिम क्रियाओं का प्रबंध करना है। "उन्होंने शांतिपूर्वक कहा-"उन्हें समाधि दी जाएगी सर्विस ट्री के नीचे-उस जगह जहाँ पौधे सजाये गये हैं। "तो, यह जगह पहले से ही छांट ली गई थी। ऐसा है भगवान का तरीका !

श्रीमाँ ने मुझे उन औपचारिकताओं का स्मरण कराया जो पूरी की जानी हैं। सबसे पहले किसी फ्रेंच डॉक्टर को मृत्यु प्रमाणित करनी है। उसके बाद ही आश्रमवासियों और जनता को सूचना दी जा सकती है। नलिनीकान्त गुप्त और अमृता को बुलाया गया। वे वहाँ हक्के-बक्के खड़े थे। पवित्र गुरुवर के चरणों के पास खड़े थे-उनके गालों पर अश्रुधारा बह रही थी।

हम अपने प्रभु के आवश्यक प्रसाधन में व्यस्त थे। श्रीमां इस निवेदन पर पहले ही राजी हो गई थीं कि आश्रम के फोटोग्राफरों (साधकों) को अंतिम चित्र लेने के लिए बुला लेना चाहिए।

अस्पताल के चिकित्सक डॉ.सुकुमारन आये और गुरुवर के शरीर को देखा। हम दोनों ने मृत्यु के प्रमाण-पत्र पर हस्ताक्षर किये।

अब आश्रम के साधकों को सूचना देनी थी। सुबह हो चली थी। पूर्व का आकाश धीरे-धीरे साफ हो रहा था। क्षितिज पर प्रकाश का एक किरण-पुंज प्रकट हुआ। मैं मुख्य आश्रम से बाहर आया।

मैं, किंकर्त्तव्यविमूढ़, गोलकुण्ड के कमरे में बैठा था। मैं देख रहा था कि आश्रमवासी जल्दी लेकिन शांतिपूर्वक आश्रम के मुख्य भवन की ओर बढ़ रहे हैं- श्रीअरविन्द का निधन हो गया है-मैंने अपने हृदय में प्रबल टीस का अनुभव किया। मैंने आकाश की ओर देखा। देखो ! वहां, श्रीअरविन्द पुन: उदित हो रहे हैं-शाश्वत सूर्य लाखों रश्मियों के साथ सामने उग रहा है।

जैसे-जैसे दिन चढ़ रहा था, लोगों का प्रवाह और लम्बा होता जा रहा था-व्यग्र लेकिन शांत और धीर,अन्तिम दर्शन के लिए। दोपहर बाद मैंने पुनः कक्ष में प्रवेश किया जहाँ हमारे प्रभु लेटे हुए थे-शांत और तेजस्वी। अनंत जन-प्रवाह-सामान्य जन, पादरी, डॉक्टर, वकील, रिक्शा-चालक, मजदूर, अमीर -गरीब, सब चुपचाप, अन्तः प्रेरित हो ऋषि के सामने पंक्तिबद्ध होते जा रहे थे। शाम के समय आश्रम का द्वार बंद हो गया। श्रीमाँ ने मुझे आशीर्वाद दिया और सुबह फिर आने के लिए कहा। मैं गोलकुण्ड के लिए चल दिया। चम्पकलाल और निरोद रात-दिन निगरानी कर रहे थे।

छः दिसम्बर-मैंने दिन निकलने से पहले श्रीअरविन्द के कमरे में प्रवेश किया। श्रीमाँ और मैंने श्रीअरविन्द को देखा- कितने अद्भुत-कितने सुन्दर लग रहे थे, वह स्वर्णिम वर्ण से युक्त। विज्ञान ने मुझे जो सिखाया था, उसके अनुसार मृत्यु के कोई भी लक्षण नहीं थे ,विवर्णता या अपघटन का कोई संकेत नहीं था। श्रीमां ने मेरे कानो में फुसफुसाया "जब तक अतिमानसिक प्रकाश नहीं निकलेगा, तब तक शरीर में अपघटन के लक्षण नहीं दिखलाई देंगे। इसमें एक दिन भी लग सकता है या कई दिन भी। "मैंने धीरे से कहा-"आप जिस प्रकाश की बात कह रही हैं, कहां है वह ? क्या मैं उसे नहीं देख सकता ? "मैं उस समय श्रीअरविन्द की शय्या के पास श्रीमाँ के चरणों में घुटनों के बल बैठा था। श्रीमाँ मेरी ओर देखकर मुस्कुराईं और असीम

करुणा से मेरे सिर पर हाथ रखा। हाँ! वह थे अपने चारों ओर नील स्वर्णिम वर्ण के ज्योतिर्मय आवरण से युक्त!

सुबह होने पर दिव्य गुरुदेव की अंतिम झलक पाने के लिए लोगों का जुलुस आ गया। श्रीमाँ ने मुझसे कहा-"लोग नहीं जानते कि श्रीअरविन्द ने दुनिया के लिए कितना बड़ा बलिदान दिया है। लगभग एक वर्ष पहले, जब मैं उनसे कुछ चर्चा कर रही थी, मैंने कहा था कि मैं शरीर को छोड़ने जैसा अनुभव करती हूँ। वह बहुत दृढ़ स्वर में बोले- 'नहीं, यह कभी नहीं हो सकता। यदि इस रूपांतर के लिए जरुरी हुआ तो मैं जा सकता हूँ। आपको हमारे अतिमानसिक अवतरण एवं योग को पूरा करना होगा। "

उस रात के बाद श्रीअरविन्द के प्रयाण का तीसरा दिन आया। श्रीमाँ और मैंने श्रीअरविन्द के शरीर पर दृष्टि डाली। अभी तक भी अपघटन का कोई लक्षण नहीं था। फ्रेंच सर्जन ने जाँच-परिणाम की क्योंकि राज्य के नियमानुसार यह जरूरी था।

मैं श्रीमाँ के कमरे में अपने मूर्खतापूर्ण अंदाज में बात कर रहा था। मैंने उनके स्वास्थ्य और दुर्बल शरीर पर लिए गए तनाव की आशंका को व्यक्त किया। वह मुझ पर हँसीं और कहा-"क्या तुम यह समझते हो कि मैं यह सारी ऊर्जा अपने मिताहार से प्राप्त करती हूँ ? निस्संदेह, नहीं। जब जरूरत हो तो व्यक्ति विश्व से अनंत ऊर्जा प्राप्त कर सकता है। "उन्होंने यह भी कहा-"नहीं, अभी मेरा इरादा अपना शरीर छोड़ने का नहीं है। मुझे अभी बहुत से काम करने हैं। जहां तक मेरा सम्बंध है, यह मेरे लिए कुछ नहीं है। मैं श्रीअरविन्द के सतत सम्पर्क में हूँ। "

श्रीअरविन्द के शरीर-त्याग के आकस्मिक निर्णय ने हम सबके मन को झकझोर दिया था। क्या यह पीछे हटना था? या यह धरती के लिए कुछ प्राप्त करने हेतु प्रयुक्त एक साधन था? कौन उत्तर दे सकता है ?

अपने सीमित मानसिक तर्क से हम कुछ भी व्याख्या करने का प्रयास करें, वह होगा सत्य का अंश ही या विकृति भी हो सकती है। हमें जरूरत है, उनमें परम् विश्वास की कि अनेक लड़ाइयों में ऊपरी तौर से चाहे पराजय लगे लेकिन अन्ततः युद्ध में अंतिम विजय अपरिहार्य है। इसमें कोई संदेह नहीं कि श्रीअरविन्द हमारे चर्म-चक्षुओं से ओझल हो गए हैं लेकिन श्रीमाँ महाशक्ति के रूप में मानव जाति के लिए लगातार संघर्ष कर रही हैं।

कभी कभी हम सब महसूस करते हैं कि हम निराशा की ओर प्रवृत्त हो रहे हैं क्योंकि दुनिया फूट, अविश्वास, लालच से खंड खंड हो रही है। ऐसी स्थिति में हम खोजते हैं आकाश में एक किरण, एक दिव्य संकेत, मानवजाति का उत्थान-एक रूपान्तरित मानवजाति। श्रीमाँ जगाती हैं एक आशा।

सात दिसंबर को सायंकाल मैंने श्रीमाँ से विदा ली। गुरुवर के ज्योतिर्मय शरीर के अंतिम दर्शन किये-मर्त्य देह में भगवान-सुंदर, शांत, मौन। अपघटन का कोई चिह्न नहीं। मैंने सहज भाव से श्रीमां से पूछा-"मुझे प्रभु का इलाज करने की अनुमति क्यों नहीं दी गई, जैसा कि मैं नित्यचर्या के रूप में करता ? और मुझे क्यों बुलाया गया ? श्रीमाँ ने मुझे यह कहकर सांत्वना दी- "हम चाहते थे कि तुम यहाँ रहो, इलाज करने के लिए उतना नहीं। " श्रीमाँ ने मुझे तीन बार आशीर्वाद दिया और मेरे सारे शोक, सारी निराशाएँ, सारे संदेह काफूर हो गये। मेरा मन आशा से प्रदीप्त हो उठा। मैं उनके चरणों में झुक गया और मैंने देखा कि भगवती श्रीमाँ, महाशक्ति मेरी ओर देखकर मुस्करा रही हैं।

इन योगिराज का अपूर्व ढंग यही समाप्त नहीं हो जाता। डॉक्टरों ने तो निर्णय दे दिया था कि रुधिर में शरीर का वह विषैला द्रव्य पूर्ण रूप से व्याप्त हो चुका है जो साधारणतया गुर्दों द्वारा बाहर निकाल दिया जाता है। ऐसी हालत में साधारणतया शरीर का रंग थोड़े ही समय में बदल कर काला पड़ना शुरू हो जाता है और फिर विकृति के चिह्न दिखाई देने लगते हैं। परन्तु मृत्यु-पत्र भरे जाने के ढाई दिन बाद भी भारतीय और फ्रांसिसी दोनों डॉक्टरों की परीक्षा के बाद यह पाया गया कि श्रीअरविन्द के शरीर का रंग वही सुंदर गौर-स्वर्ण था जो उनके जीवनकाल में था और विकार का तो कोई मामूली सा चिह्न भी नहीं था।

वह बिलकुल वैसा ही था जैसा ५ दिसंबर को १ बजकर २६ मिनट पर शरीर छोड़ने के समय था। इसके 41 घंटे बाद भी

वह उसी हालत में था, जब कि श्रीमाँ ने एक घोषणा के साथ समाधि-क्रिया अनिश्चित समय के लिए स्थगित कर दी। वह प्रसिद्ध घोषणा यह है : "श्रीअरविन्द को आज समाधि नहीं दी जा रही। उनका शरीर अतिमानस-प्रकाश के घनीभूत पुंज से इतना परिपूर्ण है कि उसमें विकार के चिह्न कहीं भी दिखाई नहीं दे रहे। जब तक शरीर ठीक अवस्था में रहेगा, तब तक इसी तरह शय्या पर लेटी अवस्था में रक्खा रहेगा। "और वह कई दिनों तक अतुल महिमामयी शांति में वैसा ही अक्षुण्ण पड़ा रहा। सहस्रों लोगों ने इस समय उनके दर्शन किये। अन्त में ९ दिसंबर को शाम के ५ बजे उनकी देह रोजवुड नामक एक बढ़िया किस्म की लकड़ी के बक्स में रख दी गई। इसमें चांदी की पर्त तथा रेशमी कपड़े का अस्तर लगा हुआ था ;फिर बक्स को अत्यधिक सादगी के साथ बिना किसी मत या धार्मिक कर्मकांड के समाधिस्थल में उतार दिया गया। यह स्थान आश्रम के प्रांगण के बीचोंबीच विशेष रूप से तैयार किया गया था। देह को बक्स में रखते समय भी न तो उसमें कोई विकृति का चिह्न था और न ही किसी प्रकार की मृत्युजन्य गंध। हाँ, कुछ ऐसे लक्षण अवश्य थे जिनसे पता चलता था कि देह की रक्षा करने वाली विलक्षण ज्योति ने अब हटना आरम्भ कर दिया है। यह कहा जा सकता है कि वह ९० घंटे तक पूर्ण रूप से शरीर के साथ रही। लियोन्स के ग्रन्थ 'मेडिकल ज्यूरिस प्रुडेंस 'के अनुसार पूर्व कि जलवायु में शव के ठीक टिके रहने के अधिकतम समय से यह समय दुगुना है।

अतिमानस अवतरण के लिए चरम संघर्ष-विदाई के पूर्व-सूचना जीवन-समाप्ति के पथ की ओर बढ़ते हुए और पीछे ठीक अवसान के समय भी जड़ प्रकृति के ऊपर उनका प्रभुत्व असाधारण था। अतिमानस की रूपांतरकारी शक्ति को, जो उत्तरोत्तर उनके अधिकार में आती जा रही थी, अस्वीकार तो किया ही नहीं जा सकता बल्कि अलौकिक रूप में उसकी सत्यता ही सिद्ध होती है। यह सब देखते हुए यदि हम कहें कि उनके महाप्रयाण की यह सारी घटना एक महत्वपूर्ण और विचारपूर्वक किये गए संघर्ष की पराकाष्ठा थी तो इसमें कोई असंगति नहीं। पर इस संघर्ष का गूढ़ाशय तो तभी जाना जा सकता है जब कि हम अतिमानस के प्रकाश के बारे में कुछ जान लें। अब यहाँ प्रश्न उठता है कि यदि यह संघर्ष पहले से सोच-विचारकर किया गया था तो क्या उन्होंने इसकी कोई पूर्वसूचना दी थी ? यह सत्य होते हुए भी कि न तो उन्होंने शिष्यों को प्रेरणात्मक पत्र लिखने ही बिलकुल बंद कर दिये थे, न उनका सूक्ष्म विनोदी स्वभाव बीच बीच में अपनी झलक दिखाना भूला था और न ही संसार की गतिविधि की ओर से उन्होंने अपनी व्यापक दृष्टि समेट ली थी, यह निश्चित है कि पिछले दो वर्षों से वे भविष्य की योजनाओं के बारे में कुछ मौन से हो चले थे और अपने आंतरिक आध्यात्मिक कार्य और साहित्य-सृजन में अधिकाधिक निमग्न होते जा रहे थे, विशेषकर अपने महाकाव्य 'सवित्री 'में, जो एक आख्यान और प्रतीक है। पर इस मुक्त और निमग्नता के होते हुए भी कुछ ऐसे संकेत अवश्य मिले थे कि उनको अपने कार्यकाल में किसी विचित्र और विकट सम्भावना का सामना करना पड़ सकता है।

कठिनाई में श्रीमाँ की सहायता पाने का गुर

श्रीअरविन्द

समस्त बाह्य रूपों के पीछे होने वाली श्रीमाँ की क्रिया में तुम्हें अटल विश्वास बनाए रखना चाहिए, और फिर तुम देखोगे कि वह विश्वास तुम्हें पथ पर सीधे लिए जा रहा है।

कोई व्यक्ति केवल अपनी ही शक्ति या अच्छे गुणों के द्वारा दिव्य रूपान्तर नहीं प्राप्त कर सकता। केवल दो चीजें हैं जिनका मूल है कार्य करने वाली माँ की शक्ति और उनकी ओर खुले रहने का साधक का संकल्प तथा उनकी क्रिया पर अटल विश्वास। अपने संकल्प और विश्वास को बनाये रखो और बाक़ी चीज़ों की परवाह मत करो, वे केवल ऐसी कठिनाइयाँ हैं जो साधना में सबके सामने आती हैं।

श्रीमाँ कभी भविष्य की कठिनाइयों, पतनों या विपत्तियों की बात नहीं सोचतीं। उनका ध्यान सर्वदा एकाग्र होता है प्रेम और प्रकाश पर, न कि कठिनाइयों और अधःपतनों पर। माँ उच्चतर सद्वस्तु को जगत् में लाती हैं-उनके बिना बाकी सब कुछ अज्ञानपूर्ण और मिथ्या है।

एक बार जब व्यक्ति योगमार्ग में प्रवेश कर जाता है तब उसे केवल एक ही चीज़ करनी होती है-उसे दृढ़ता के साथ यह निश्चय करना होता है कि चाहे जो कुछ भी क्यों न हो, चाहे जो भी कठिनाइयाँ क्यों न उठ खड़ी हों, मैं अन्त तक अवश्य जाऊँगा। सच पूछा जाए तो कोई भी मनुष्य निजी सामर्थ्य के द्वारा योग में सिद्धि नहीं प्राप्त करता-सिद्धि तो उस महत्तर शक्ति के द्वारा आती है जो तुम्हारे ऊपर आसीन है-और समस्त उतार-चढ़ावों में से गुज़रते हुए, लगातार उस शक्ति को पुकारते रहने से ही वह सिद्धि आती है। उस समय भी, जब कि तुम सक्रिय रूप से अभीप्सा नहीं कर सकते, सहायता के लिए श्रीमाँ की ओर मुड़े रहो-यही एकमात्र चीज़ है जिसे सर्वदा करना चाहिए।

बस आवश्यकता है अध्यवसाय की, निरूत्साहित हुए बिना आगे बढ़ते जाने की और यह स्वीकार करने की कि प्रकृति की प्रक्रिया तथा श्रीमाँ की शक्ति की क्रिया कठिनाई के अन्दर भी काम कर रही है और जो कुछ आवश्यक है उसे करेगी। हमारी अक्षमता से कुछ नहीं आता-जाता। एक भी व्यक्ति ऐसा नहीं जो अपनी प्रकृति के भागों में अक्षम न हो पर भगवती शक्ति भी विद्यमान है। अगर कोई उस पर विश्वास रखे तो अक्षमता क्षमता में परिवर्तित हो जाएगी। उस समय स्वयं कठिनाई और संघर्ष भी सिद्धि प्राप्त करने के साधन बन जाते हैं।

अपनी कठिनाईयों पर सोच-विचार मत करते रहो। उन्हें माँ पर छोड़ दो और उनकी शक्ति को अपने अन्दर कार्य करने दो जिससे वह उन्हें तुम्हारे अन्दर से निकाल बाहर कर दे।

इस विचार को कभी आने और अपने को परेशान मत करने दो कि "मैं समर्थ नहीं हूँ, मैं यथेष्ट प्रयास नहीं करता हूँ।" यह एक तामसिक सुझाव है जो अवसाद ले आता है और फिर अवसाद अनुचित शक्तियों के आक्रमण के लिए दरवाज़ा खोल देता है। तुम्हारी स्थिति तो यह होनी चाहिए कि "जो कुछ मैं कर सकूँगा, वह करूँगा। माँ की शक्ति, स्वयं भगवान् यह देखने के लिए मौजूद हैं कि समुचित समय के अन्दर सब कुछ कर दिया जाए।"

उचित मनोभाव है घबराना नहीं, शान्त-स्थिर बने रहना और विश्वास बनाये रखना पर साथ में यह भी आवश्यक है कि श्रीमाँ की सहायता ग्रहण की जाए और किसी भी कारण से उनकी शुभ-चिन्ता से पीछे न हटा जाए। हमें कभी असमर्थता, प्रत्युत्तर देने की अयोग्यता के विचारों में नहीं लगे रहना चाहिए, दोषों और असफलताओं पर अत्यधिक ध्यान नहीं देना

चाहिए और इन सबके कारण मन को दुःखी और लज्जित नहीं होने देना चाहिए क्योंकि ये विचार और बोध अन्त में कमज़ोर बनाने वाली चीज़ें बन जाते हैं। अगर कठिनाइयाँ हैं, ठोकरें लगती हैं या असफलताएँ आती हैं तो उन्हें शान्त-स्थिर रह कर देखना चाहिए और उन्हें दूर करने के लिए शान्ति के साथ, निरन्तर भागवत सहायता को पुकारना चाहिए, लेकिन कभी विचलित या दुःखी या निरुत्साहित नहीं होना चाहिए। योग कोई सहज पथ नहीं है और प्रकृति का सर्वांगीण परिवर्तन एक दिन में नहीं किया जा सकता।

इस सबका कुछ लाभ नहीं, इस प्रकार की शिकायतों, शंकाओं आदि को ताक पर धर दो। तुम्हें उदास या विचलित हुए बिना, श्रीमाँ की शक्तियों को ग्रहण करते हुए, उन्हें कार्य करने देते हुए, जो कुछ उनके मार्ग में आड़े आये, उस सबको दूर फेंकते हुए, पर अपनी किसी कठिनाई या दोषों से अथवा माँ की क्रिया में किसी प्रकार के विलम्ब या धीमेपन से विचलित हुए बिना, शान्त भाव से आगे बढ़ते जाना है।

निराशा या अधीरता के इन सुझावों को अपने अन्दर मत घुसने दो। श्रीमाँ की शक्ति को कार्य करने के लिए समय दो।

इस प्रकार का दुःख-शोक और निराशा सबसे बुरी बाधाएँ हैं जिन्हें मनुष्य अपनी साधना में खड़ा कर सकता है,इनमें कभी संलग्न नहीं होना चाहिए। मनुष्य स्वयं जिसे नहीं कर सकता उसे वह श्रीमाँ की शक्ति को पुकार कर उससे करा सकता है। उसी को ग्रहण करना और उसे अपने अन्दर कार्य करने देना साधना में सफलता पाने का सच्चा तरीका है।

निरुत्साहित होने का कोई कारण नहीं है। प्रकृति की तैयारी के लिए तीन वर्ष का समय बहुत अधिक नहीं है। प्रकृति साधारणतया उत्थान-पतन से होती हुई धीरे-धीरे उस अवस्था के समीप पहुँचती है जहाँ निरन्तर उन्नति करना सम्भव हो जाता है। समस्त बाहरी रूपों के पीछे होने वाली श्रीमाँ की क्रिया के प्रति अपने विश्वास से दृढ़तापूर्वक चिपके रहना चाहिए और तब तुम देखोगे कि वह तुम्हें कठिनाइयों से बचा ले जाएगी।

क्या इस पर विश्वास किया जा सकता है कि जब कठिनाइयाँ दूर नहीं होतीं तब भी माँ की कृपाशक्ति कार्य करती रहती है?

उस अवस्था में तो प्रत्येक व्यक्ति कह सकता है, मेरी सभी कठिनाइयाँ तुरन्त दूर हो जानी चाहिए,मुझे तुरत-फुरत और बिना किसी कठिनाई के पूर्णता प्राप्त कर लेनी चाहिए, अन्यथा यह बात सिद्ध हो जाती है कि माँ की कृपा मेरे ऊपर नहीं है।

तुम्हें निराशा के इन सभी भावों को दूर फेंक देना चाहिए। ऐसी उदासी तुम्हें उस चीज़ की ओर से बन्द कर देगी जो माँ तुम्हें दे रही हैं। ऐसी मनोभाव के लिए कोई भी समुचित कारण नहीं है। कठिनाइयों का होना योग-जीवन की एक जानी-मानी बात है। अन्तिम विजय या भागवत कृपा की कार्यकारिता पर सन्देह करने का यह कोई कारण नहीं।

मन की शान्ति को एक समान और निरन्तर बनाये रखने के लिए प्राण के अन्दर जो भाग भी चञ्चल है, उसे स्थिर-अचञ्चल बनाना होगा। उसे संयमित तो करना होगा, पर केवल संयम ही पर्याप्त नहीं, श्रीमाँ की शक्ति को सर्वदा पुकारना होगा।

अग्निशिखाअप्रैल 2020

सिद्धि-दिवस

छोटेनारायण शर्मा

सन 1926 ई. श्रीअरविन्द-योग के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण वर्ष है। इसी वर्ष 24 नवम्बर को श्रीअरविन्द एकान्त में चले गए। उस दिन एक विशेष अवतरण हुआ जब कि श्रीकृष्ण की चेतना शरीर में उतर आयी और अतिमानसी सिद्धि का मार्ग खुल गया। कुछ पहले से ही इस वर्ष आश्रम के जीवन में अनदेखे एक ऐसे परिवर्तन का प्रारम्भ हुआ जो अत्यन्त ही सहजता से सम्पादित होता गया।

श्रीमाँ के साथ कुछ साधिकाएँ ध्यान के लिए जाने लगीं, पीछे कुछ साधक भी इसमें शामिल होने लगे। धीरे-धीरे आश्रम का बाहरी विधान श्रीमाँ की ओर अभिमुख हो रहा था और 24 नवम्बर के बाद श्रीअरविन्द जब बिल्कुल एकान्त में चले गये तब तो आश्रम के संचालन का सारा भार ही श्रीमाँ के ऊपर आ पड़ा।

इस वर्ष श्रीअरविन्द ज्यों-ज्यों लोगों से विलग, एकान्तनिष्ठ हो रहे थे लोगों में यह विश्वास घर कर रहा था कि एक ऊँची चेतना का अवतरण होने ही वाला है। वायुमण्डल भी धीर-धीरे दूसरी तरह का हो रहा था। व्यक्तिगत रूप से लोगों को कई तरह के अनुभव भी हो रहा थे। श्रीअरविन्द जो ध्यान के लिए साधारणतः अपराह्न के 4 बजे आ जाया करते थे, अब कभी-कभी 6 बजे आने लगे। कभी-कभी रात के 8 बजे और एक बार तो वे आधी रात के बाद 2 बजे आये। लगता था उनकी सारी शक्ति एक विशेष प्रयत्न में लगी हुई है। साधकों के साथ सम्बन्ध तो अनिवार्य था ही, फिर भी वे जो प्रयत्न कर रहे थे, उसमें उनकी तल्लीनता स्पष्ट थी। कुछ लोगों के लिए यह अत्यन्त ही भयावह बात थी। श्रीअरविन्द उनसे दूर हो रहे थे। कहीं वे अनन्त के अतिदूर कक्ष में खो तो नहीं रहे थे? जिन्होंने अपने विराट प्रयत्न से योग की दुर्लभ सिद्धियों को अत्यल्पकाल में ही करतलगत कर लिया था, वे अब दूर क्यों होने लगे? वह कौन-सी तपस्या थी, जिसे वे लोगों के सम्पर्क में रहते हुए नहीं कर सकते थे? फिर लोगों की यह धारणा भी थी कि श्रीअरविन्द का योग एक विश्वयोग है, संसार से विमुखता का योग नहीं। और जब वे अधिक दूर, अधिक गम्भीर दिखलायी पड़ने लगे,इससे भी लोग अधिक शंकालु दीखने लगे।

ये लोग संसार की रक्षा अथवा सहायता के सम्बन्ध में अपने विचारों से भरे थे। परन्तु श्रीअरविन्द के योग का मानचित्र बदल रहा था, वह अधिक विशाल होता जा रहा था और इस मानचित्र में मानव अथवा संसार सिमटते चले जा रहे थे। भागवत संकल्प के इस योग की महिमा थी। इसमें प्रकृति की दिव्य चरितार्थता थी, मानव के उच्चतम स्वप्नों की संसिद्धि भी थी, लेकिन लोग जो अपनी पूर्वार्जित धारणाओं में बँधे थे, उनके लिए यह एक अचिन्त्य बात थी।

संसार नहीं जानता था लेकिन वे तो संसार की ही मंगल साधना में तल्लीन थे।

श्रीअरविन्द की यात्रा मात्र चेतना की यात्रा न थी। जीवन में ही सांस्थानिक परिवर्तन की विराट योजना उनके उद्देश्य में शामिल हो चुकी थी। दिव्य चेतना के उच्चतम शिखरों का उनका आरोहण कब का समाप्त हो चुका था। सन1920 ई.में ही बारीन को लिखे पत्र में उन्होंने लिखा था कि उनका काम था चेतना की उच्चतम भूमिका में- अतिमानस में-मन, प्राण और शरीर को उठा ले जाने का। परन्तु उसकी उपलब्धि आसान नहीं है। 15 वर्ष के बाद अभी मैं अतिमानव के तीन स्तरों में सबसे निचले स्तर तक उठने की चेष्टा कर रहा हूँ और अपनी सारी गतियों को उस स्तर तक उठा ले लाने के लिए प्रयत्नशील हूँ।

फिर प्रकाश के अवतरण की चर्चा दूसरे स्थल पर उन्होंने इस प्रकार की थी, जड़तत्त्व के ऊपर के स्तरों में सत्य और प्रकाश को उतार लाने में कठिनाई है। इसके लिए प्रकृति के कुछ वर्तमान नियमों में परिवर्तन की आवश्यकता है। पहले तो वायुमण्डल को बदल जाना होगा। शक्ति अथवा ज्ञान को प्राप्त कर लेने का यह सवाल नहीं है बल्कि सचमुच यह सवाल है

जड़त्व में सत्य को उतार लाने का।

श्रीअरविन्द ने 'आर्य' के माध्यम से जो अपना सन्देश संसार को दिया था, उसके बाद भी कई वर्ष बीत चुके थे। साधना अनवरत चल रही थी और अब एक निश्चित मोड़ आ चुका था। श्रीअरविन्द जीवन को भूले न थे, भूल भी नहीं सकते थे। उन्होंने ही तो कहा था जीवन ही-कोई दूरस्थ, शान्त ऊँचा आनन्दमय लोक नहीं है– "जीवन ही हमारे योग का क्षेत्र है।"(योग समन्वय से, p.211) "श्रीमाँ के शब्दों में, दूर ऊर्ध्व चेतना में जब व्यक्ति होता है तो वह ऊँची चीजों को देखता है, उसका ज्ञान उसे मिलता है, परन्तु वस्तुतः जब वह नीचे जड़तत्त्व में आता है तो लगता है, जैसे बालू में पानी समा रहा हो।" (The Adventure of Consciousness,p.211)

श्रीअरविन्द इसी बालुकाराशि को सींच रहे थे। जड़तत्त्वों से बने शरीर के ऊपर इसका प्रभाव भी दिखाई पड़ रहा था, श्रीअम्बालाल पुरानी ने जब श्रीअरविन्द को आश्रम में दुबारा सन 1921 ई. में देखा तो वे उनकी स्वर्णिम और गौर कान्ति को देखकर अचकचा गये। श्रीअरविन्द का वर्ण था श्याम और अभी उन्हें वे बिलकुल बदले हुए से लगे।श्रीअरविन्द को देखते ही उन्होंने पूछा, "यह क्या?" तो श्रीअरविन्द भी विनोद की मुद्रा में उनके चेहरे पर बढ़ी दाढ़ी को लक्ष्य कर बोले, "और यह क्या?"

सन 1926 ई.के अगस्त के बाद अवतरण की चर्चा और आशा से वायुमण्डल गम्भीर होने लगा था। कहा जा चुका है कि श्रीअरविन्द का ध्यान के लिए जाना भी इधर निर्धारित समय पर नहीं हो रहा था। सभी इस बात को समझ रहे थे कि वे एक विशेष अवतरण की प्रतीक्षा और चेष्टा में हैं। अतिमानसी सिद्धि के लिए यह आवश्यक था। मनोमय चेतना और अतिमानस के बीच उस मध्यस्थ चेतना की चर्चा भी वे करते ही थे जिसका नाम उन्होंने 'अधिमानस' दिया था। यही वह चेतना है, जो देवों की उद्गम भूमि है, सृजन शक्ति अनेकशः धाराओं में यहीं से चलती है। संसार अब तक जो कुछ भी है और इसकी जो कुछ भी ऊँची-से ऊँची सम्भावनाएँ हैं, वे सब इसी चेतना से अधिशासित और सृष्ट हैं। एक सत्य नाना शक्तियों में, नाना रूपों में यही दिखाई पड़ता अथवा अनुभूत होता है-वेदों में वर्णित-एक सद्विप्राः बहुधा वदन्ति के अनुभव की यही अपनी भूमि है।

परन्तु रूपान्तरण का जो सन्देश श्रीअरविन्द ने दिया था, वह इससे सम्भव न था। उसके लिए तो अतिमानस का अवतरण ही आवश्यक था। परन्तु इस अवतरण के पहले जो चीज आवश्यक थी, वह थी अधिमानस का यहाँ अवतरण और पार्थिव तत्त्व में प्रवेश। अधिमानस के शरीर में स्थापित होने से ही अतिमानव के अवतरण का आधार तैयार हो सकता था।

आखिर 24 नवम्बर का दिन आया। श्रीमाँ तो इस अवसर की प्रतीक्षा में थीं ही, लोग भी अपनी व्यक्तिगत अनुभूतियों के आधार पर एक विशेष अवतरण की प्रतीक्षा में थे। नवम्बर के प्रारम्भ से ही वायुमण्डल में एक विशेष चाप का अनुभव सभी कर रहे थे। आज सूर्यास्त हो चुका था। लोग अपने-अपने कामों में लगे थे, बहुत-से बाहर समुद्र कि ओर टहलने चले गये थे। इसी समय श्रीमाँ ने लोगों को बुलावा भेजा। थोड़ी ही देर में सभी आ गये। बरामदे में श्रीअरविन्द की कुर्सी के पीछे तीन सर्पाकार दानवों का चीनी चित्र काले पर्दे पर लटक रहा था। आज इस चित्र का विशेष अर्थ था। चीन में एक भविष्योक्ति है कि मन, अन्तरिक्ष और पृथ्वी के तीन दानव जब मिलेंगे, तभी सत्य पृथ्वी पर उद्घाटित होगा। आज इस चित्र की सार्थकता थी। वायुमण्डल एक विचित्र शान्ति से ओतप्रोत था। लोग अपने माथे पर एक चाप का अनुभव कर रहे थे। हवा में एक शान्ति, एक गम्भीरता व्याप्त थी। इसी बीच दरवाजे से श्रीअरविन्द का इशारा पा श्रीमाँ श्रीअरविन्द के दक्षिण पार्श्व में स्टूल पर बैठीं। श्रीअरविन्द कुर्सी पर बैठे। करीब पैंतालिस मिनट तक गम्भीर ध्यान चलता रहा। उसके बाद एक-एक कर साधक श्रीमाँ को प्रणाम करने लगे। श्रीमाँ के साथ ही श्रीअरविन्द के वरदहस्त का आशीर्वाद भी उन्हें मिलने लगा। इस प्रकार अशीर्वाद की समाप्ति के बाद भी ध्यान का एक संक्षिप्त क्रम चला। वातावरण वर्णनातीत था। कुछ साधकों का चुपचाप चलने वाला यह आत्मनिवेदन, श्रीअरविन्द और श्रीमाँ की यह मुद्रा, दिव्य प्रेम और करुणा की धारा में साधकों का यह तीर्थस्थान पार्थिव रंगमंच के वृहत् कोलाहल में एक वैसी घटना थी जिसकी लघुकाय जीवन के प्राचीमूल में क्षीण अरुण रेखा के समान ही प्रकट हुई। परन्तु दिग्मण्डल में व्याप्त महान्धकार के नाश का इसमें संकेत था, नये सूर्योदय की यह सूचना थी। दत्ता, एक पश्चिम देशीय साधिका अभीभूत हो उठीं।

वे बोलीं, आज भगवान पृथ्वी पर प्रकट हुए हैं।

भौतिक परिमण्डल में यह अधिमानसी आनन्द चेतना का पर्दापण था। श्रीकृष्ण इसी चेतना के अवतार थे। आज वही चेतना श्रीअरविन्द के भौतिक विग्रह में प्रकट हुई। अतिमानस के जड़तत्त्व में प्रवेश का मार्ग इससे खुल गया। आश्रम में यह दिवस उसी प्रकार स्मरणीय और पूजित है जिस प्रकार श्रीअरविन्द का जन्मदिन अथवा श्रीमाँ का जन्मदिन। नऐ

पूर्वप्रकाशित कर्मधारा 1995

सावित्री

मंगेश नाडकर्णी

जिस प्रकार अश्वपति का योग " सावित्री" महाकाव्य के प्रथम 24 सर्गों को प्रमुखता से समेटे हुए है वैसे ही आगे 25 सर्गों में सावित्री का शौर्यपूर्ण व्यक्तित्व चित्रित हुआ है। और जिस प्रकार अश्वपति के योग के समस्त विवरण अपना सत्य और शक्ति श्रीअरविन्द के योग की तपस्या से ग्रहण करते हैं, वैसे ही सावित्री के योग के समस्त चित्रण एवं वर्णन, मृत्यु से उसका संघर्ष और उस पर विजय, माताजी के आन्तरिक जीवन की तपस्या से अपना सत्य और शक्ति ग्रहण करते हैं। एक प्रकार से सावित्री महाकाव्य, अतिमानसिक युग के दोनों अग्रदूतों, श्रीअरविन्द एवं श्रीमाँ के आभ्यन्तर जीवन की महागाथा है। किन्तु साथ ही वह सभी के जीवन की भी कथा है जो, बहुत सतर्कता एवं निकटता से मानवी जीवन को संस्पर्श करती है और उसकी विशद व्याख्या करती है। वस्तुत: श्रीअरविन्द ने सावित्री-सत्यवान के आख्यान द्वारा हम मनुष्यों के अन्तर्बाह्य जीवन की महत्ता का प्रतीकात्मक ढ़ंग से प्रस्तुतीकरण किया है।"सत्यवान" का चरित्र हमारी उस अभीप्सा का प्रतीक है जो अनवरत प्रभु एवं प्रकाश के लिए एवं मुक्ति तथा अमरता के लिए प्रयास करती है जबकि ठीक इसके विपरित हमारा सामान्य जीवन भाग्य, अज्ञान तथा मृत्यु की जकड़न में कसा हुआ है। "सावित्री" वह "दिव्य कृपा" है जो हमारे जीवन में सत्यवान रुपी इस अभीप्सा को पुनर्जीवित करने के लिए पृथ्वी पर मनुष्य की भव्य नियत "दिव्य जीवन" को उपलब्ध करने के लिए अनवरत क्रियाशील है। इस प्रकार श्री अरविन्द का यह महाकाव्य हमारे अपने जीवन की भी कहानी है।

अपनी पिछली बैठक में हम देवर्षि नारद के उस प्रसंग तकर्षि नारद के उस प्रसंग तक पहुँचे थे, जब वे सावित्री की माता को सावित्री और उसके भाग्य के बीच आने से मना करते हैं। फिर सावित्री अपने माता-पिता का आशीर्वाद लेकर वापस वन की पर्णकुटी में चली जाती है और सत्यवान के साथ नया जीवन शुरु करती है। सत्यवान से जुड़ जाने पर उसके जीवन का प्रत्येक क्षण, प्रत्येक स्पन्दन भरपूर आनन्द का क्षण व सुख का स्पन्दन बन जाता है। यद्यापि इस आनन्द की तह में पूर्वगत भविष्यवाणी की निरन्तर टीसने वाली वह पीड़ा बनी हुई है कि सत्यवान के जीवन के इने-गिने दिन शेष रह गये है। सावित्री के हृदय का यह निजी दु:ख उसे वैश्विक दु:ख की अनुभूति के निकट ले आता है। बहादुर और कृतसंकल्प, देवी रुपा तो भी मानवी गुणों से युक्त सावित्री असहाय सी उन बारह महीनों को कटते देख रही है जिनका क्षण-क्षण रिसता जा रहा है। अब वह क्या करेगी? कैसी अपनी मानवीस परिसीमाओं से ऊपर उठेगी? क्या हम मानवों के लिए बलवान "भाग्य" से बचना मुमकिन है? और क्या हम अपनी नियति के सदा ही खिलौने बने रहेंगे? क्या वे भी अपने को अपने "भाग्य-लेख" के हवाले कर दे अथवा उसमें ऐसी शक्ति है जो उसे भाग्य के इस क्रूर विधान से अपनी रक्षा के योग्य बना सके और उस पर विजय दिला सके?

जिस समय सावित्री इन प्रश्नों पर चिन्ता कर रही होती है तो उसे एक अन्तर्वाणी सुनाई देती है-

"उठ और मृत्यु पर विजय प्राप्त कर।"
इन पंक्तियों में उस वाणी को सुनिये-
मृत्यु से जकड़ी इस गुँगी धरती पर तु क्यों आई?
इन तटस्थ आकाशों तले, यह अज्ञानजनित मानव-जीवन है
एक बलि पशु के समान हे जो बँधा हुआ है "काल" के खम्बे से ।
ओ आत्मा! ओ अमर शक्ति !
क्या बेबस हृदय में दु:ख को पोषित करने के लिए तु आई है ?

क्या नीरस शुष्क आँखों से दुर्भाग्य की प्रतीक्षा के लिए हुआ है तेरा आगमन ?
उठ ओ आत्मा! काल और मृत्यु को परास्त कर।

(पर्व 7, सर्ग 2, पृष्ठ 474)

अन्तरात्मा की यही वाणी सावित्री को बताती है कि उसके जीवन का वास्तविक उद्देश्य क्या है-
प्रथ्वी को स्वर्ग के समकक्ष उठने के लिए करना होगा अपना रुपान्तर
अथवा स्वर्ग को उतरना होगा प्रथ्वी के धरातल पर
और इस विशाल आध्यात्मिक परिवर्तन को सम्भव करने हेतु,
मानव हृदय की "रहस्यमयी गुफा" में वास करती,
स्वर्गिक "चैत्य सत्ता" को उठाने होंगे अपने स्वरुप पर पड़े आवरण,
उसे अपने कदम रखने होंगे साधारण जीवन के संकुल कक्षों में
और अनावरण आना होगा प्रकृति के अग्रभाग में
परिपूर्ण एवं अनुशासित करना होगा, इसके जीवन, शरीर एवं विचारों को।

(पर्व 7, सर्ग 2; पृष्ठ 486-87)

सावित्री का जन्म एक "वैश्विक इच्छा" के फलस्वरुप हुआ था। उसे अज्ञान और मृत्यु पर विजय पाने के लिए जन्म-कक्ष में उतरना पड़ा था ताकि वह पृथ्वी से इनको मिटा सके। अपने अवतरण के हेतु को साधने के लिए उसे तीक्षण समस्या का सामना करना पड़ता है वह है- अपने पति की भाग्य द्वारा निर्धारित पूर्वनियत मृत्यु। अभी तक मनुष्य की कोई भी शक्ति, उसके हृदय, मन, विचार और संकल्प का कोई भी प्रयास इस समस्या का हल ढूँढने में समर्थ नहीं हो पाया है। अत: निश्चय ही इन सबसे परे मनुष्य की वास्तविक शक्ति कहीं और निहित है, और वह शक्ति है उसका दिव्य अंश "चैत्य पुरुष" (psychic Being)। अपने अन्तरात्मा के निवासी इस दिव्य अंश को उसे सक्रिय बनाना होगा, अपनी प्रकृति के सामने के अग्रभाग में लाना होगा और उसके द्वारा ही अपने जीवन की प्रत्येक गतिविधि को संचालित एवं नियन्त्रित करना होगा। केवल तभी मनुष्य "मृत्यु" और "अज्ञान" पर विजय पा सकता है। इस सचाई को जानकर सावित्री अपने अन्दर की ओर उन्मुख हो जाती है। यहाँ "आत्मा की खोज" शीर्षक से सावित्री के योग का वर्णन हुआ है और करीब सात सर्गों में इसे प्रस्तुत किया गया है जिसमें पर्व सात के लगभग पचास पन्ने हैं।

मूल महाभारत कथा में सावित्री "त्रिरात्र" व्रत लेती है। यह व्रत तीन दिन तीन रात अपने को शुद्ध करने की तपश्चर्या का व्रत है। और वह सतीत्व की शक्ति को अपने अन्दर जागृत करने का संकल्प करती है। श्रीअरविन्द के "सावित्री" महाकाव्य में कथा के इस प्रसंग को भी विस्तार से प्रतिपादित किया गया है और सावित्री का योग भी बड़े उत्कृष्ट एवं शोभनीय तरीके से विकसित होते दर्शाया गया है तथा अन्तरात्मिक धरातल पर उसका योग पूर्ण होते विकास को प्राप्त करता है, लेकिन सावित्री जो मार्ग चुनती है, वह अश्वपति के मार्ग से अलग है।

प्रारम्भ में वह प्राण एवं मन के प्रदेशों से होकर यात्रा करती है। तब वह एक ऐसे क्षेत्र में आती है जहाँ उसकी भेंट तीन मातृरुपा शक्तियों (Three Madonna's) से होती है। ये तीनों प्रभु की वे वैश्विक दिव्य शक्तियों है जो सदा से ही मनुष्य जीवन में सक्रिय हैं। उनमें से पहली माता "प्रेम एवं सहानुभूति" की देवी है, दूसरी "शौर्य एवं पराक्रम" की शक्ति है तथा तीसरी "प्रकाश एवं प्रज्ञा" की माता है। ये तीनों दैवी शक्तियाँ सावित्री की असली "माता" होने का दावा करती है। सर्वाधिक ध्यान देने लायक बात यह है कि तीनों शक्तियों का एक-एक आसुरिक विकृत रुप भी है जो मानव प्रकृति में अनवरत कार्य

कर रहा है और वह भी सावित्री से सम्भाषण करता है।सावित्री की इन तीनों वैश्विक शक्तियों एवं उनके विकृत आसुरिक रुपों से भेंट की घटना मावन जीवन के इतिहास मे महान प्रेममयी और दयालु जीवात्माओं की विद्यमानता सदा बनी रही है। इन्होंनें पृथ्वी से सभी दु:ख, क्लेश एवं शोक नष्ट करने के बड़े-बड़े प्रयास किये है; यद्यपि वे कुछ मनुष्यों की आँखों के आँसू पोंछने में सफल भी हुई, लेकिन पृथ्वी से ये सब रोग, शोक, पीड़ाएँ कभी पूरी तरह नष्ट नहीं हो पाये। यही हश्र शौर्य एवं पराक्रम की शक्ति का भी होता रहा है। आज मनुष्य के पास विज्ञान द्वारा दी गई असीम शक्ति है जिसका प्रयोग करने से वह भूख एवं रोग इस धरती के सीने से दूर कर सकता है। क्या कहीं भी वह ऐसा करता हुआ दृष्टिगोचर हो रहा है? मानवता ने अत्यंत प्रबुद्ध, उच्च आदर्शयुक्त संत-महात्माओं को भी देखा है, उनकी प्रेरणा, आग्रह एवं उपदेशों ने कुछ मनुष्यों के जीवन को सान्त्वना और श्रेष्ठता भी प्रदान की है व उन्हें भगवद-प्राप्ति की राह पर ले जाकर उद्धार भी किया है। लेकिन पूरी मानवता के लिए क्या उपाय है? क्या वह अभी तक मृत्यु और अज्ञान के चंगुल में नहीं फँसी हुई हैं?

अत: सावित्री उन तीनों दैवी शक्तियों में से हर एक से कहती है कि वह उसकी आत्मा का एक अंश रुप है जिसे मानवता की सहायता के लिए सामने रखा गया है। मनुष्य ने इन दैवी शक्तियों के कारण ही वह सब कुछ प्राप्त किया है जो सभ्यता एवं संस्कृति द्वारा पाया जा सकता है। लेकिन वे शक्तियों पूर्ण-रुपेण सामर्थ्यवान नहीं है और इसलिए वे मनुष्यों को भी पूर्ण सामर्थ्य और मुक्ति नहीं दे सकी है। इस महान कार्य को सम्पन्न करने के लिए कुछ और अन्य शक्तियों की भी आवश्यकता है, जबकि ये दैवी शक्तियाँ पृथ्वी-जीवन की परिपूर्णता के लिए मनुष्य के शौर्यपूर्ण किन्तु निष्फल संघर्ष के कुछ पक्षों को सामने ला पाई है। उनके विकृत रुप हमें आसुरिक ताकतों के बारे में स्पष्ट सावधान करते हैं कि कैसे उन्होंने मानवी विकास-क्रम की सीढ़ी पर चढ़ते पाँवों को नीचे खींचा है और उनका विरोध किया है। इनका हर विकृत रुप दम्भ के रेशम से लिपटा हुआ है और दार्शनिकतावाद, अहंकार एवं नैतिकता का मुखौटा पहने कुटिल मजे ले रहा है। इस शैतान की बनावटी बातें सुनिये जो प्रेम और सहानुभुति का विकृत रुप हैं-

मैं दु:ख पुरुष हूँ, मैं वह हूँ
जिसे जगत के विशाल क्रॉस पर कीले ठोंक दी गई,
मेरे दु:खों का आनन्द लेने के लिए भगवान ने यह सृष्टि रची,
मेरे भावावेगों को उसने बनाया अपने नाटक का कथानक।.....
अपने इस निष्ठुर संसार में उसने मुझे भेज दिया नग्न करके
और फिर मुझे पीटा दु:ख और पीड़ा की छड़ों से
ताकि मैं उसके कदमों पर गिरकर रोऊँ और गिड़गिड़ाऊँ.....
और अपने रक्त और आसुँओं से उसकी पूजा कर अर्घ्य चढ़ा दूँ
मैं पशु की तरह श्रम करता हूँ और उसी की तरह मर जाता हूँ
मैं विद्रोही हूँ, साथ ही असहाय क्रीत दास हूँ
मेरे भाग्य और मेरे मित्रों नें मुझे सदा ठगा है
मैं शैतानी दृष्टताओं का एक शिकार हूँ
मैं कर्ता हूँ आसुरिक कार्रवाइयों का,
मैं "अनिष्ट" के हेतु सृजा गया था, वही मेरे भाग्य में है
मैं "अशुभ" हूँ और वही बनकर जीऊँगा

(पर्व 7, सर्ग 4, पृष्ठ 505, 507)

क्या यह प्रलाप हमें वर्तमान समय के उन क्रान्तिकरियों के कृत्रिम वचनों व वक्तव्यों की याद नहीं दिलाता जिन्होंने भगवान को तो निर्वासित कर दिया है और जोर न्याय एवं समानता के नाम पर हिंसा और विनाश सिखा रहे हैं? ये क्रान्ति के दावेदार अपना मिशन प्रेम और सहानुभूति से शुरु करते हैं लेकिन अन्तत: उनके कथन घृणा और कटुता में बदल जाते हैं। कारण, ये किसी भी स्तर पर आध्यात्मिक धरातल और धारणा से शून्य होते हैं। अब आप शक्ति और सौन्दर्य के विकृत रुप असुर की शेखी सुनिये जो यह सोचता हैं कि उसका काम भगवान औक प्रकृति के कार्यों में सुधार करना है-

मैं प्रकृति से अधिक महान हूँ, भगवान से अधिक बुद्धिमान हूँ
मैनें उन सब वस्तुओं को यथार्थ रुप दिया जिसका उसने स्वप्न भी नहीं देखा
मैंने उसकी शक्तियों को कब्जे में कर उनका अपने उद्धेश्य के लिए प्रयोग किया
मैनें उसकी धातुओं को नये रुपों में ढाला, नई धातुएँ बनाई
मैं दुध से शीश और वस्त्रालंकार बनाऊँगा
लोहे को मखमल और पानी से पत्थर बनाऊँगा
ऐसा कोई चमत्कार नहीं जिसे मैं नहीं कर सकूँगा घाटित एवं साकार
भगवान ने जो कुछ अधुरा बनाया, उसे मैं पूरा करुँगा
जाटिल मन और अर्धनिर्मित आत्मा से बाहर निकल
उसके पाप और भूलें मैं मिटा दूँगा
जो वह नहीं कर पाया उसे मैं सृजूँगा
वह पहला सृष्टा था, मैं अन्तिम सृष्टा हूँ।

(पर्व 7, सर्ग 4, पृष्ठ 512)

ये शब्द हमें उस दम्भी और नास्तिक वैज्ञानिक की वह याद दिलातेहै जो सुन्दर धरती को आणविक शक्ति केन्द्रों और नयूक्लीयर

मिसाइल से अलंकृत करने में व्यस्त बना हुआ हैं और अपने को आखिरी सृष्टा मानता है। लेकिन वर्तमान हालातों को देखकर हम सभी को ऐसा प्रतीत होता है कि वह पृथ्वी को केवल एक कब्रगाह ही बनाने में सफल होने जा रहा है। आगे इस असुर की बातें सुनिये जो आत्मा और भगवान् में विश्वास नहीं करता हैं-

मैं मानव हूँ, मुझे मानव ही रहने दो
जब तक मैं, अचित् मैं न गिर जाऊँ, मूक और निद्रित न हो जाऊँ
यह सोचना कि प्रभु छिपा रहता है इस मिट्टी के पुतले में
और "शाश्वत सत्य", काल-सीमा में अनुबन्धित रह सकता है,
और उसे अपनी रक्षा और विश्व के परित्राण हेतु पुकारना
है केवल एक कपोल-कल्पना और बहुत बड़ी नादानी
मनुष्य कैसे अमर हो सकता है, दिव्य बन सकता है?
कैसे उस मूल उपादान को रुपान्तरित कर सकता है जिससें वह बना है?
इसका सपना देख सकते हैं वे मायावी देवगण, विचारशील मनुष्य नहीं।

(पर्व 7, सर्ग 4, पृष्ठ 520)

उसका यह कथन हमें एक समझदार और उदार मानवतावादी की याद दिलाता हैं। वह बुद्धिमान, नैतिक, चरित्र वाला और नेक भावनाओं वाला है। लेकिन वह जीवन के आध्यात्मिक आयामों को और मनुष्य की आध्यात्मिक नियति को अस्वीकार कर देता है। अत: उसके समस्त सुधार और परिवर्तन अन्त में गलत और भ्रान्त अभियान की तरह समाप्त हो जाते हैं। ये विकृत आसुरिक रूप और इनकी ताकतें, प्रेम, प्रज्ञा और दिव्य शक्तियों की अपेक्षा तनिक भी कम सक्रिय नहीं है। वे अनवरत जीवन में प्रभावी हैं। सावित्री उन सब शक्तियों की बातें सुनती है और उत्तर में कहती है कि केवल मानवी देह में प्रभु का अवतरण ही प्रेम-शक्तियों और प्रकाश की क्रियाओं को समन्वित तथा सुदृढ़ कर सकता है और "अहंकार" का प्रभु में विलय कर सकता है। यह बात वह प्रकाश की देवी से कहती है-

एक दिन मैं लौटूँगी "उसका" हाथ होगा मेरे हाथ में
तब तुम देखोगी उस "परम प्रभु" के मुख की शोभा को
तब वह शुभ परिणय-बन्धन होगा सम्पादित
और तब यहाँ दिव्य परिवार का जन्म होगा
और समस्त धरा जीवन में प्रकाश और शान्ति का वास होगा।

(पर्व 7, सर्ग 4, पृष्ठ 421)

सावित्री ने अपनी "आत्मा की खोज" में पड़ने वाली बाधाओं में से एक सर्वाधिक बड़ी बाधा को पार कर लिया हैं; वह अपनी आंशिक दिव्य शक्तियों एवं उनकी अहंकारी विकृत रूपों से आगे बढ़ चुकी है। तब सावित्री एक रिक्त एवं घोर अन्धेरे प्रदेश से होकर गुजराती है और सहसा ही पूरी तरह स्वयं को शक्ति-समार्थ्य से रहित महसूस करती है। कुछ ही क्षणें बाद उसे एक परिवर्तन का आभास होता है और उसे अपने लक्ष्य के निकट पहुँचने की कुछ आनन्दप्रद अनुभूति होती हैं। अन्तत: वह अपनी आत्मा के साहचर्य में आ जाती है और उसकी चैत्य-सत्ता आत्मरूप हो जाती है-

वे दोनों इस प्रज्ज्वलित एवं प्रकाश प्रभा कक्ष में परस्पर मिलीं
उन्होंने एक-दूसरे को देखा और स्वयं को जाना
वह थी गुह्या "दिव्यता" और यह उसका मावनी अशं
वह प्रशान्त "अमरता" और यह सघंर्षशील जीव-सत्ता
तब एक जादुई रूपान्तरकारी गाति से
वे एक-दुसरे की ओर झपटी और एक-दुसरे में समा गई।

(पर्व 7, सर्ग 5, पृष्ठ 527)

अब यहाँ सावित्री में, मूल मातृशक्ति कुंडलिनी-जागरण का विविध विवरण हम पाते हैं-

अचेतन की आत्महीन, मनहीन "महानिशा" से निकल
एक जाज्वल्यमान सर्प, नीदं से जागकर उठा।

(पर्व 7, सर्ग 5, पृष्ठ 528)

तब एक के बाद दूसरा, इस प्रकार षष्ठ चक्र- सहस्रार चक्र,आज्ञा चक्र, विशुद्धि चक्र, अनाहत चक्र, स्वाधिष्ठान चक्र एवं मूलाध चक्र-उन कमलों की तरह खुलते गये जैसे प्रथम सूर्य-किरण का स्पर्श पाकर वे खिल जाते है। अब सावित्री की समूची

सत्ता दिव्य शक्ति और अलौकिक आनन्द में आविष्ट हो जाती है। महाकवि श्री अरविन्द उस आनन्द का वर्णन निम्न पंक्तियों में करते हैं-

ओ आत्मा, मेरी आत्मा! हमने किया है "स्वर्ग" का सृजन
हमने अपने भीतर ढूँढ़ लिया है महान प्रभु का राज्य स्थल,
"उसके दुर्ग बने हुए है एक विशाल अज्ञानी विश्व में
"प्रकाश" की दो सरिताओं के बीच हमारा जीवन एक समतल भूमि हैं,
हमने अन्तरिक्ष को शन्ति की घाटी में बदल दिया है
और देह को आनन्द की राजधानी, एक मूर्त मन्दिर बना लिया है।
और अधिक क्या, अधिक क्या? यदि अभी कुछ करना और शेष है, कर लेना चाहिए।

(पर्व 7, सर्ग 5, पृष्ठ 531)

और निम्नलिखित पद्यांश में कवि की अपनी टिप्पणी है आन्तरिक रूपान्तर की उस अवस्था पर, जो सावित्री ने प्राप्त कर ली है-

एक मन्दिर का निर्माण हुआ जहाँ उच्चदेव कर सकेंगे वास।
यदि इस समूचे संघर्षरत विश्व को एक ओर छोड़ दें
तो भी एक मानव की "परिपूर्णता" कर सकती है विश्व की रक्षा
उच्चलोकों से एक नयी घनिष्ठता हो गई है उपलब्ध
मानवीय "कालक्रम" में भगवान का एक शिविर हो गया है गठित।

(पर्व 7, सर्ग 5, पृष्ठ 531)

सावित्री अब मानवता के उन्नयन एवं रूपान्तर के लिए, प्रभु का एक शिविर, एक वास-स्थान और एक मन्दिर बन चुकी है। पूरी सृष्टि मानो इस परिवर्नत में शरीक होने लगती है जो सावित्री से नि:सृत हुआ है। उसके सामान्य से दैनिक कार्यों में भी नई गुणवत्ता आ गई है, एक अधिक महत एवं प्रगाढ़ प्रेम ने उसे सत्यवान से जोड़ दिया है।, लेकिन अभी तक सावित्री की अन्तर्यात्रा का अन्त नहीं हुआ है। एक दिन साहसा उसके हृदय में एक अप्रत्याशित भय एवं घना अधेंरा उमड़ आता है। वह एक कड़क आवाज सुनती है-

मैं "मृत्यु" हूँ और जीवन की काली भीषण "माता"
मैं "काली" हूँ अनावृत हूँ इस जगत में
मैं माया हूँ और विश्व मेरा छलावा है
मैं अपनी श्वासों से ही मानवी खुशियों को व्यर्थ कर देती हूँ।

(पर्व 7, सर्ग 6, पृष्ठ 535)

कैसे कोई "काल" और "भाग्य" और इसी कारण "मृत्यु की जकड़ से ऊपर उठ सकता है। तब एक अन्य आवाज उसे सलाह देती है कि मृत्यु को अतिक्रमण करने का एक ही उपाय है कि आत्मा से विलगत का जो भावप्रवण कोष है, उसे त्याग दिया जाय और सर्वेच्च "प्रभु" की जो शून्यता है उसे सहमति दी जाय। उस समय भी जब कोई आध्यात्मिकत आनन्द में डूबा होता है, यदि उस आनन्द के अनुभव को पृथक भाव से अनुभव कर रहा होता है और उसके प्रति जागरुक होता है, तो

मृत्यु वहाँ प्रवेश कर सकती है। इसलिए वह आवाज सावित्री को सर्तक करती है-

अपने हर विचार का परित्याग कर और प्रभु का "शून्य" वन जा
अब तू उस "अनभिज्ञ" को अनावृत कर लेगी
किसी भी बात को सहमति न दे, "काल" के क्रम को घुल जाने दे
अपने मन को सहमति न दे "काल" के क्रम को घुल जाने दे
अपने मन को निकाल फेंक, अपने नाम और रूप के पीछे हट जा
"एकमेव" बन जा जैसे कि केवल प्रभु हो सकते है।

(पर्व 7, सर्ग 6, पृष्ठ 537-38)

अपनी सर्वोच्च आध्यात्मिक विजय और पूर्णता के मुहूर्त पर अंह का रचं-मात्र बोध न होना, यही वह मांग है जो सावित्री से की गई। वह आत्मा-रिक्तता की अवस्था पा लेती है और एक ऐसी स्थिती में पहुँच जाती है जहाँ न कोई कर्ता है जो देखता है और न विषय है जो देखा जाता है। एक आकृति-विहीन मुक्ति उसमें सहमहित हो जाती है और वह अनन्तता में विलय हो जाती है। यह "निर्वाण" का अनुभव है और "निर्गुण ब्रह्म" का अनुसन्धान कर लेना है-

इस अनन्त "महाशून्य" में ही अन्तिम सकेंत निहित था
अथवा वह जो वास्तविक है, वह "अज्ञेय" ही बना था
उस एक "एकमेव ब्रह्म" में सब कुछ क रिक्त कर दिया था
उसने मिटा दिया था यह अज्ञानी विश्व अपने एकाकीपन से
और आत्मा को अपनी सनातन शन्ति में समेट लिया था।

(पर्व 7, सर्ग 6, पृष्ठ 550)

निर्वाण का यह अनुभव सावित्री में, एक रिक्त चेतना में, जो सबसे रहित है, केवल मात्र अनावृत सत्य ले आता है। एक निर्वैयक्तिक रिक्तता उसमें संचार करने लगती है और वह ऐसे चलती-फिरती है जैसे "प्रभु" की व्यापकता में घूम रही । उसका भौतिक अंहकार प्रभु की निशा में घुल गया है। यह गया है। यह अवस्था उसमें पूर्ण समर्पण की भावना ले आती है। महाकवि उसके विषय में ऐसे बयान करते है जैसे वह बिना परिधि का कोई वृत्त हो। वहाँ न कोई व्यक्ति शेष रहा था, न केन्द्रित मन। सावित्री धीरे-धीरे इन सब अनुभवों को पाती हुई अपनी नियति की उस महान घड़ी का सामना करने के लिए तैयार की जा रही है जब सत्यवान मृत्यु के द्वारा आहत होगा। लेकिन सावित्री अब उस आने वाले संकट से चिंतित नहीं है। एक पत्नी और एक नारी ,जो कि सावित्री थी, अब एक निर्वैयक्तिक आध्यात्मिक शक्ति-पुँज में रूपान्तरित हो गई है। "नकारात्मकता" उस परम ब्रह्म का सम्पूर्ण अनुभव नहीं है। यह "नकारात्मक" केवल वह ठोस धरातल है

जिस पर उस आदि कर्ता का बहुमंजिला भवन टिका हुआ है।

एक दिन सावित्री को "सगुण ब्रह्म" के महान अनुभव से परिपूर्ण होना है-

अब वह अवास्तविक जगत कहि हो गया था लोप मन द्वारा सिरजी गई सृष्टि नहीं रह गई थी शेष अब वहाँ निराकार एवं साकार ब्रह्म का आनन्द सर्वत्र व्याप्त था वहाँ एकमेव परमप्रिय के हाथ थे और "प्रेम" ही सर्वस्व था

सर्वदृष्टा मन का एक ही दृश्य था और विचार था
प्रभु के उच्चतम शिखरों पर अपने विद्यमान होने का आहलाद था

सवित्री की आत्मा ने विश्व को जीवन प्रभु के रूप में देखा
सर्वत्र उसी "आखिल ब्रह्म" को देखा और अनुभव किया, सब कुछ "वही" था।

(पर्व 7, सर्ग 7, पृष्ठ 554-56)

इस विशाल अन्तर्दर्शन से सावित्री को अपने अनन्त के साथ एक हो गई है। उसे महसूस होता है कि उस परम सत्ता में वह अनन्त के साथ एक हो गई है। स्वयं "वही" बन गई है, उसी बिन्दु पर पहुचँ गई है जो सीमातीत है, अनुभवातीत है-

वही वृक्ष और फूल की एक अवचेतन जीवन जीवन बन गई थी
बसन्त की मधुमयी कलियों का वही प्रस्फुटन थी
वह गुलाब की शोभा और अनुराग में दीपित थी
अनुरागी पुष्पों का वह रक्तवर्ण हृदय थी
सरोवर में खिले कमलों का स्वप्निल श्वेत रूप थी
पूरा विश्व उसके हृदय में पुष्प सा खिला था, वह उसकी शैया थी
वह स्वयं "समय" थी और समबद्ध प्रभु का स्वप्न थी
वही अन्तरिक्ष थी और उसकी परिधियों की व्यापकता थी
"आनन्दमयता उसकी गतियों की नैसर्गिक जगह भी
और शाश्वतता उसके द्वारा "समय" को देखती थी।

(पर्व 7, सर्ग 7, पृष्ठ 557)

अब सावित्री अपनी आन्तरिक खोज के अन्तिम मुहाने पर आ पहुची हैं। हर्षावेगों, अन्तर्दर्शनों और विद्युत संचालित परिवर्तन उसमें एक के बाद दूसरा आते गये हैं और वह सरल, सादी, सुन्दर सावित्री जान लेती है कि वास्तव में वह "कौन" है-**"प्रभु का गुलाब"।**

अब वह मृत्यु का सामना करने के लिए तैयार है।

सावित्री एक संक्षिप्त परिचय

श्रीमाँ का देह-त्याग

(17 नवम्बर 1973)

निरोदबरन

माताजी का शरीर त्याग

यह संस्मरण श्रीमां द्वारा श्रीअरविन्द की व्यक्तिगत सेवा में नियुक्त १२ वर्ष साधक नीरोदवरण द्वारा लिखा गया है। 17 नवम्बर, दैवनियोजित दिन आया। वह मेरा जन्मदिन भी था। उनके दर्शन होने का तो कोई प्रश्न ही नहीं था । किन्तु हम यह कल्पना नहीं कर सकते थे कि दशा इतनी गंभीर होगी। प्रतिदिन के भांति ही सारा व्यवहार होता रहा, और तो और, उस रात्रि को साप्ताहिक पिक्चर -शो भी हुआ। दोपहर को मित्र लोग मुझे जन्मदिन अभिनन्दन करने भी आये और मैं उनसे मिलने जुलने में व्यस्त था , किन्तु मेरा अंतर वहां नहीं था।ज्यों ही मैं अपने को उनसे मुक्त कर सका त्यों ही तुरंत ऊपर गया। मैं बाहर बैठा था, कुमुद ने श्रीमाँ के कक्ष का द्वार खोला और मुझसे कहा कि मैं प्रणव को देखूं और बुलाऊं । उस समय संध्या के 7 बजे थे। प्रणव कुछ क्षणों के लिये बाहर गया था। वह दौड़ता हुआ आया। डॉक्टर को भी, रोज के समय से कुछ पहले बुलाने को भेजा गया था । द्युमन जो उस समय कदापि ऊपर नहीं जाते थे वे भी वहां थे। आन्द्रे भी वहां थे। रात्रि के आठ बजे के करीब वे घर जाने को बाहर आये। उनका चेहरा गंभीर और शान्त था । दुर्घटना का कोई संकेत दिखाई नहीं पड़ता था। किन्तु द्युमान और डॉक्टर क्यों ? किस वास्ते उनको यहां रोक लिया और प्रणव को तुरंत ऊपर क्यों बुलाया गया? ये प्रश्न थे जो मेरे मन को अशांत कर कुर दे रहे थे। दशा अवश्य ही अत्यंत गंभीर होगी, ऐसा मुझे लगा। गौतम, एक युवा साधक जिसने श्रीमाँ की सेवा की थी, वह भी, अपने घर से हमारे साथ रात गुजारने को आ गया। मैं इधर-उधर घूमता हुआ, प्रत्येक छोटी -सी ध्वनि के लिये अपने कान खड़े करके, रोज की भांति श्रीअरविन्द के कमरे में थोड़ी देर सोने को गया और आकस्मिक आवाज़ से मै एकदम उठ गया। वह मध्य रात्रि का समय था। मैं शीघ्र ही पहुँच गया और देखा कि माताजी के कक्ष में से नलिनी नीचे आ रहे थे, प्रणव भी पीछे था।

नलिनी का चेहरा भावहीन सा था, किन्तु प्रणव ने अपने गंभीर स्वर से प्राणघातक शब्द सुनाये -माताजी ने अपना शरीर छोड़ दिया '। यह अघात असहनीय था, हानि अपूरणीय एवं अकथनीय।

तय किया गया था कि यह समाचार किसी भी रूप में अभी बाहर नहीं जाना चाहिये। पहले शरीर नीचे लाना था और

'ध्यान कक्ष 'में रखना था। प्रणव ने अपने हाथों में उनको उठा लिया और नीचे ले आया जहां हममें कुछ ने 'ध्यान कक्ष ' तक माताजी की देह ले जाने में उसकी सहायता की।वहां माताजी का जो दूसरा पर्यंक तैयार रखा गया था, श्रीमाँ की देह उस पर रखी गयी थी। रात्रि के करीब 3 बजे थे।अब लोगों को अविश्वसनीय दु:खद सत्य के बारे में सूचना दी गयी। शेष कहानी का पुनराख्यान नहीं करना है क्योंकि वह बहुत ही ख्यात है।

कोई रास्ता नहीं

श्रीमाँ

जो लोग दुखी हैं सोचते हैं, "आह एक दिन आएगा जब मैं मर जाऊँगा, और मेरी सारी मुसीबतें ख़त्म हो जाएँगी,"- वे बड़े ही सीधे लोग हैं, आज्ञानी हैं! यह कुछ भी ख़त्म न होगा, बिल्कुल न होगा, यह चलता ही रहेगा। यह तब तक चलता ही रहेगा जब तक कि वे बाहर नहीं निकल आते हमेशा के लिए! अर्थात, जब वे अज्ञान से ज्ञान में उभर और उबर आएँगे। यही एकमात्र रास्ता है अज्ञान से ज्ञान में उभर आना। और अन्यथा तुम हज़ार बार मर सकते हो, इससे तुम बाहर न निकल पाओगे। यह बिल्कुल बेकार है-यह ऐसे ही चलता रहेगा। बल्कि कभी कभी तो यह तुम्हें और भी नीचे खींच लेता है।

आश्रम गतिविधियाँ

17 नवम्बर

17 नवम्बर आश्रम में मौन दिवस के रूप में बिताया जाता है । इस दिन आश्रमवासी सभी क्रिया-कलाप जारी रखते हुए आंतरिक रूप से नीरवता का अभ्यास करते हैं। संध्या समय सभी आश्रमवासियों द्वारा अभीप्सा के दीप जलाये गये व सभी ने समाधि - दर्शन किया।

24 नवम्बर

24 नवम्बर को सिद्धि दिवस के रूप में मनाया जाता हैं इस दिन श्रीअरविन्द ने अधिमानस के भौतिक अवतरण में सफलता प्राप्त की थी। संध्या समय आश्रमवासियों द्वारा दिये जलाये गये तथा भक्ति सगींत के साथ ध्यान किया गया।

5 दिसम्बर

5 दिसम्बर श्रीअरविन्द के महासमाधि के दिवस के रूप में मानाया जाता है। इस दिन समाधि दर्शन के लिए बाहर से श्रद्धालु जन आये। ध्यान कक्ष में भक्ति संगीत चलता रहा और संध्या समय सभी आश्रम वासियों द्वारा श्रद्धा के दीप प्रज्ज्वलित किये गये। ध्यान कक्ष में तारा दीदी द्वारा श्रीमाँ के कथनों का सस्वर पाठ किया गया।

25 दिसम्बर

आश्रम में 25 दिसम्बर बड़ा दिन (Chrisimas day) बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। इस दिन आश्रम में प्रातः 9 :00 बजे खेल प्रतियोगिताओं का आयोजन किया गया। इस प्रतियोगिता में आश्रम के सभी बच्चों ने भाग लिया। तथा संध्या समय 6:30 बजे सभी आश्रमवसियों द्वारा दिये जलाये गये और आश्रम के बच्चों द्वारा संगीत का आयोजन किया गया। (कोविड महामारी से उत्पन्न सामयिक विषमता हेतु पूरी सावधानी रखत हुए समस्त आयोजन सम्पन्न हुआ।) तत्पश्चात उपहार व प्रसाद वितरण किया गया।

रविवार संत्सग

प्रत्येक रविवार को श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा द्वारा संध्या समय हिन्दी वार्ता (सीधा-प्रसारण) का आयोजन किया जाता है, जिसमें श्रीअरविन्द योग पथ से जुड़े सुविज्ञ वक्ताओं को आमंत्रित करते हुए विविध विषयों पर वार्ताएँ (ऑनलाइन) प्रस्तुत पर की जाती हैं ये वार्ताएँ ध्वन्यांकित (रिकॉर्डिग) रूप में फेसबुक पर सुनी जा सकती हैं।
आश्रम की विविध गतिविधियों को यू ट्यूब एवं फेस बुस पर सुना जा सकता है।